मानव मन्दिर

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-3-91 Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 22-9-91 को होगा।

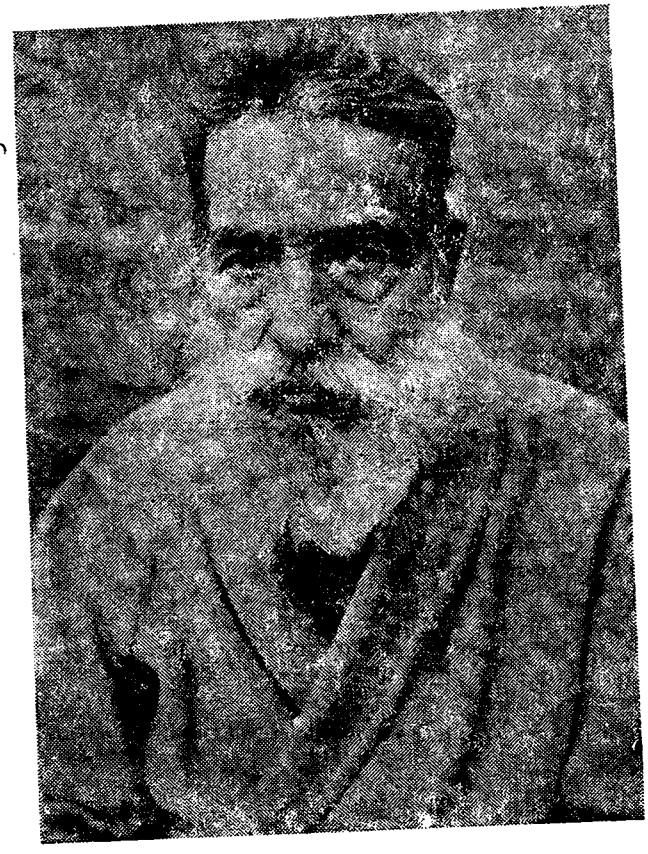

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

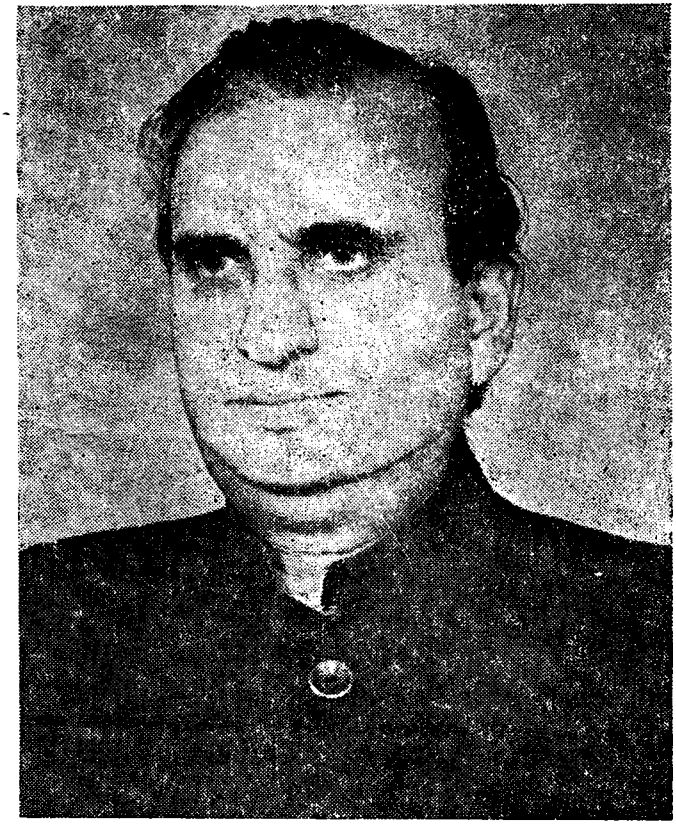

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

| वर्ष 18 | मंगलवार, 10 सितम्बर 1991 | संख्या 5 |

ज्ञान के नुक्ते

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छा बाकी है, वह मोहताज और कंगाल है। चाहे उसे सातवें लोक का राज्य भी प्राप्त हो जाय, लेकिन वास्तव में, उसकी हैसियत एक भिखारी साधु से भी बुरी है।

जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रही, उसके पास यदि पेट की रोटी, तन के लिए कपड़ा भी न हो, तो भी वह राजाओं का राजा है।

निष्कामता मन को सन्तुष्टि देती है। इच्छा हमेशा भूखा और प्यासा रखती है। परन्तु यह बात बहुत देर में समझ आती है।

जिसके मन में कोई भी इच्छा शेष नहीं रही, उसे कोई देगा तो क्या देगा और उससे लेगा भी क्या? इच्छारहित व्यक्ति काल और कर्म के कर्ज़ से स्वतन्त्र हो जाता है और उसे फँसाने के लिए कोई जाल बाकी नहीं रहता।

माया सबको ठगती फिरती है। दुनिया में कौन ठगा जाता है? जिसे किसी भी प्रकार की इच्छा बाकी रह जाती है। जिसके मन में किसी भी प्रकार की इच्छा ही नहीं रही, उसे ठगेगा कौन?

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरे सब देस।
जा ठग ने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥

इस इच्छा के जगत् में हज़ारों, लाखों और करोड़ों रूप हैं। जगत् में कोई भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं देता, जिसे किसी न किसी बात की इच्छा न हो। संसार की इच्छा, धर्म की इच्छा, स्वर्ग की इच्छा, यहाँ तक कि मुक्ति की इच्छा, सब की सब इच्छाएँ ही तो हैं। जब तक मनुष्य के मन में इच्छा की एक गन्ध भी रह जाती है, वह कंगाल का कंगाल बना रहता है। जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छा बाकी नहीं रही, वह वास्तव में, देवताओं से भी बड़ा है।

यह इच्छा ही है, जो विष्णु के शरीर से लक्ष्मी बनकर चिपटी रहती है। इच्छा ही है, जो सावित्री होकर, ब्रह्मा के गले का हार हो रही है और यह इच्छा ही है, जो शिव जी के बाईं ओर पार्वती बनकर बैठी रहती है।

यह संसार क्या है? यह वासनारूप है। वासना कहते हैं इच्छा को। अब आप ध्यान देकर देख लो दुनिया में कौन-सा ऐसा मण्डल है, जहाँ इस वासनाशक्ति ने अपने हाथ-पाँव नहीं फैला रखे हैं। आज मास्टर ज्ञानचन्द ने शब्द पढ़ा :—

चलो री सखी आज पिया से मिलाऊँ।
तन, मन, धन की प्रीति छुड़ाऊँ ॥

जब तक व्यक्ति में तन, मन तथा धन से प्रीति की गन्ध भी बाकी है, तब तक पिया से मिलाप होना कठिन है। वह पिया से तो तब मिलेगा जब उसकी तन, मन तथा धन से प्रीति जाती रहती है। उस समय चाहे वह पिया से मिल जाय लेकिन इससे पहिले नहीं।

वह पिया है कौन? वह पिया है कौन। वह पिया और

कुछ नहीं है, वह केवल निष्कामता है। निष्काम या इच्छा-रहित हो जाओ तो पिया से मिल जाओगे।

राम ने जब गुरु वसिष्ठ का उपदेश सुना, जिसका सारांश यह था कि निष्काम होने की इच्छा करो, तब राम ने गुरु से पूछा, "क्या इस निष्कामता की प्रच्छा भी इच्छा नहीं ?" ऋषि ने उत्तर दिया, "राम ! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही सुन्दर है। तुम निःइच्छितपने की इच्छा को भी इच्छा कह रहे हो। साधारण बुद्धि वाले लोग इस निःइच्छित-पने को इच्छा ही कहेंगे। लेकिन ऐ राम ! वास्तव में, निष्कामना की इच्छा इच्छा नहीं होती, वह तो क्रियात्मक उपाय है, जिससे व्यक्ति को निष्कासना का धन हाथ आता है। व्यक्ति हाथ का मैल धोने के लिए हाथ में साबुन मलता है, साबुन इसलिये नहीं मला जाता कि वह मैल के ऊपर एक तह जम कर रह जाय, अपितु इसलिये मला जाता है, कि जहाँ वह मैल की तह को धोये, आप भी धुल कर साफ हो जाय। इसलिये साबुन को मैला बनाने की इच्छा न समझो, वह तो सफाई का क्रियात्मक उपाय है। इसी प्रकार निष्कामना की इच्छा भी एक ऐसा ही यत्न है, जो इच्छा की जड़ को काट देता है और साथ ही साथ निष्कामना की इक्छा भी मिट जाती है।

राधास्वामी मत या सन्तमत में जो मुख्य शिक्षा दी जाती है, वह व्यक्ति को निष्काम बनाने की ही शिक्षा है, किन्तु इस नुक्ते के समझने वाले व्यक्ति बहुत ही कम हैं।

न ख्याल है किसी का, न किसी की आरजू है।
न तलाश है किसी की, न किसी की जुस्तजू है॥
दिल से गरज़ नहीं है, नहीं जिस्म व जाँ से मतलब।
हम मस्त हो गये जब, मस्ती मन व सियू है।

ख्वाहिश हो दिल में किसी की, फ़ानी है मुल्क दौलत।
फ़ानी बहिश्त व दोज़ख, सब में फ़ना की रबू है॥
कायम नहीं जहाँ का, इक तौर पर बतीरा।
इसमें फ़ना की रंगत, इसमें फ़ना की बू है॥
फ़ानी की जब हो ख्वाहिश, फ़ानी बनोगे भाई।
फ़ानी नमाज़ रोज़ा, और आबते वज़ू है॥
दिल साफ़ कर लो अपना, बाकी रहे न ख्वाहिश।
यह है तारीक सच्चा, सच्ची सस्त व शू है।
बेख्वाहिशी की ख्वाहिश, ख्वाहिश है सब से आला।
यह हो नसीब अपने, बस इसकी आरज़ू है॥

जागने और सोने की दशा में इच्छाओं का जाल चारों ओर फैला रहता है। इसी जागने और सोने का दूसरा नाम नासूत और मलकूत है। इसीको ही विराट् और ओंकार कहते हैं। यही सहस्रदल कँवल और त्रिकुटी है। जिस समय आत्मा शून्य मण्डल में जाती है, सभी इच्छाओं के सम्बन्ध आप ही आप कट जाते हैं। जाग्रत और स्वप्न दोनों में जब सुषुप्ति आ गई, तो किसी प्रकार की इच्छा बाकी नहीं रहती, क्योंकि ऐसी अवस्था में निजस्वरूप अपने आप में ठहर जाता है। इसी कारण उसे शून्य या जबरूत कहा जाता है। अपने मन में सोचो! शून्य का अर्थ क्या है? शून्य का अर्थ है इस तरह की सफाई हो जाना कि मन के अन्दर या तुम्हारे निजरूप के अन्दर वासना या इच्छा की गन्ध बाकी न रहे। उस अवस्था में आनन्द ही आनन्द है। मन को सदा खाली करने की ओर ध्यान दो, जब यह खाली होने लगेगा, आकाश की सूरत बन जायेगी। आकाश को शून्य कहा जाता है। यह तो केवल उदाहरण ही है, असली शून्य का स्थान तो अभी आगे ही है।

जिस समय मन भ्रम, विचार और इच्छाओं से निर्मल

हो गया, तो तीनों लोकों का राज्य स्वयं ही मिल गया। यह राज्य कोई, जायदाद नहीं हैं। अलंकार के रूप में बात इसलिये की जा रही है, ताकि विषय रोचक बन जाय।

सत, रज, तम की नदी बहती हुई संगम के रूप में स्थित है। इस संगम में नहाओ ताकि तीनों गुणों का मल धुल जाय और साबुन के उदाहरण की तरह इन गुणों का नाश हो जाय। यह त्रिवेणी में नहाने का अभिप्राय है। जब तुम नहा लोगे मन माधो की गाँठ ढीली पड़ जायेगी।

लोग प्रयाग तीर्थ करने जाते हैं, संगम में नहाते हैं। प्रयाग कहते हैं परे के यज्ञ को और त्रिवेणी कहते हैं गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम को, जो सत, रज, तम या कर्म, ज्ञान और भक्ति के रूपक हैं। गंगा भक्ति है, यमुना कर्म है, सरस्वती ज्ञान है। इनमें नहा कर इनमें नहाने की इच्छाओं को भी त्याग दो। तब बात तुम्हारी समझ में आयेगी और आप अपने निजरूप में प्रवेश कर जाओगे। वास्तव में, सही अर्थों में इसीको ही खूँट छुड़ाना कहते हैं। यही ही परे का यज्ञ या प्रयाग है। खेद की बात तो यह है कि असली अर्थों को तो कोई समझता नहीं। बस! संगम-स्नान किया, मिट्टी में सन गये। परिणाम क्या हुआ।

तीरथ चाले दो जना, मन कपटी चित चोर।
एकौ पाप न ऊतरा, लाये दस मन और॥
काशी गये प्रयाग गये, द्वारिका गये।
जैसे गये थे वैसे ही, वापिस भी आ गये॥
काशीपुरी से मथुरा से, क्या लाभ मिल गया।
हमने यह देखा पाप में, मन और मिल गया॥
तीरथ का है घमण्ड, मूरत पै है घमण्ड।
तप का घमण्ड मन में हुआ, और बना मुसण्ड॥

संडा मुंडा बन के, यह बलवान हो गया ।
पाया नर तन ज्ञान को, अज्ञान को गहा ॥
क्या लाभ इससे तुझको, हुआ दे पता मुझे ।
मैं पूछता हूँ खुल के सुना, भेद कुछ मुझे ॥

काल का चक्र ज़ोर-शोर से चल रहा है, जैसे स्प्रिंग के सहारे घड़ी के पुर्ज़े घूमते रहते हैं, ठीक उसी तरह काल के स्प्रिंग में पिरोया हुआ ब्रह्माण्ड ज़ोर-शोर से नाच रहा है। पृथ्वी घूमती है, सूर्य चक्र में है। चन्द्रमा, तारागण सब घूम रहे हैं। यहाँ तक कि सप्तर्षि भी, इस काल के फन्दे से बचे हुए नहीं दीखते। इस कालचक्र में पड़ा हुआ प्राणी भिन्न-२ प्रकार के कर्म करता रहता है। एक कर्म से सैकड़ों, हज़ारों तथा लाखों कर्म पैदा होते हैं जिस तरह एक वृक्ष के बीज के फल से लाखों प्रकार के बीज बनते रहते हैं। इन कर्मों के क्रम में तरह-२ की वासनाएँ मन में पैदा होती रहती हैं। यह सिलसिला बढ़ता ही रहता है, घटने में नहीं आता और कालचक्र और भी दृढ़ बनाता हुआ प्राणियों को फँसाने का प्रबन्ध करता रहता है। एक इच्छा पूरी हुई दूसरी उसी समय सामने आकर खड़ी हो गई। एक इच्छा के सिलसिले में बेशुमार इच्छाएँ पैदा होती रहती हैं। तो आप ही बताओ काल कर्म के बन्धन से किसी का कैसे छुटकारा हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य अनिच्छा या निष्कामता के ही इष्ट को अपने मन में स्थान दे, तभी ही इस काल कर्म के पंजे से छुटकारा होगा, नहीं तो काल इन कर्म करने वाले जीवों को दाँतों से पीसता हुआ, चबा-२ कर निगलता रहेगा और इस लपेट में आये हुए जीव रिहाई नहीं पा सकते।

हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी, कि हर ख्वाहिश पै दम निकले ।
बहुत निकले मेरे अरमाँ, वे लेकिन फिर भी कम निकले ॥

एक कहानी है कि किसी साधु की कुटिया में एक चुहिया रहती थी। वह बिल्ली से बहुत डरती थी। उसने साधु से प्रार्थना की, "बाबा मुझे एक बिल्ली बना दो।" साधु ने उसे बिल्ली बना दिया। कुत्ते उस बिल्ली पर झपटने लगे। वह साधु के पास गई और प्रार्थना की, "बाबा मुझे कुत्ता बना दो।" साधु ने उसे कुत्ता बना दिया। जब कुत्ते पर एक चीते ने हमला किया तो वह भागा-२ साधु के पास आया और बोला, "बाबा! मुझे चीता बना दो।" साधु ने उसे चीता बना दिया। एक दिन किसी राजा के हाथी ने उस चीते पर हमला किया तो वह भागा-२ साधु के पास पहुँचा और प्रार्थना की कि उसे हाथी बना दिया जाय। साधु ने उसे हाथी बना दिया जब महावत उसकी गर्दन पर बैठकर अंकुश से मारने लगा तो उसे बहुत दर्द हुआ, तंग होकर उसने साधु से प्रार्थना की, "बाबा मुझे महावत बना दो।" साधु ने चुहिया को महावत बना दिया। एक बार हौदे पर बैठी रानी महावत के किसी कसूर पर इतनी क्रोधित हुई कि राजा से कहकर उसने महावत को फाँसी की आज्ञा करवा दी। महावत दौड़ा-२ फिर साधु के पास गया और प्रार्थना की कि उसे रानी बना दिया जाय। साधु ने उस चुहिया को रानी भी बना दिया। एक दिन राजा रानी पर किसी बात पर इतना क्रोधित हुआ कि उसने आज्ञा दी कि रानी को पत्थर मार-२ कर उसके प्राणों का अन्त किया जाय। अब तो वह रानी बनी हुई चुहिया भागी-२ साधु के पास गई और बोली, "बाबा! आपकी कृपा से मैं सब कुछ बनी यहाँ तक कि रानी भी बनी, परन्तु चैन तो मुझे कहीं भी नहीं मिला।"

साधु ने कहा, "तेरे अन्दर चुहिया का संस्कार है। अच्छा है कि तू चुहिया ही होकर मेरी कुटिया में रह।"

अन्त में वह चुहिया वापिस चुहिया बनकर साधु की कुटिया में रहने लगी। इस परिवर्तन के ढंग का नाम आवागमन या जन्म-मरण है। जो बनता है, वह बिगड़ता भी है। बनना या बिगड़ना इच्छा ही के सिलसिले में होता है। इसलिये क्या यह अच्छा नहीं है कि हम इच्छा के फंदे से छुटकारा ही पा जायें।

महाशून्य और भँवरगुफा को पार करते हुए सतलोक की ओर चलो सतलोक क्या है? सतलोक तुम्हारे अपने ही अस्तित्व (हस्ती) का मण्डल है। अपने ही अस्तित्व का दर्शन करो, अपने ही रूप को देखो और अपनी असलियत को जानो। तभी इस इच्छा के जाल से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जायेगा।

इस अस्तित्व के स्थान पर आकर सुरत को तेज़ दुरबीन मिल जाती है, जिससे वह अलख तथा अगम को देख लेती है, तब किसी और मण्डल पर जमने की इच्छा नहीं होती, कोई इच्छा नहीं रहती। जब कोई इच्छा ही नहीं रही तथा सुरत निर्मल होकर, अपने असली स्वरूप से मिल गई, तो फिर वह क्या कहे और क्या सुने।

अवधूत और अहंकारी राजा

दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

ईश्वर एक दिन किसी मरघट पर पहुँचा और मनुष्यों की खोपड़ियाँ इकट्ठी करके उन्हें देखने लगा। उसने ऐसा क्यों किया? इसका पता आगे चलकर इसी कहानी में ही मिलेगा। ईश्वर कभी-२ अनेक रूप से उपदेश दिया करता है। एक बात हो तो कोई कहे। उसकी लीलाएँ सब की सब विचित्र हुआ करती हैं।

उस देश का राजा बड़ा घमण्डी था। साधुओं से घृणा करता था। उसको अपने अच्छे ऊँचे कुल और राजाओं के वंश में उत्पन्न होने का इतना घमण्ड था कि वह बाकी सबको नीच कुल और अप्रतिष्ठित लोगों की सन्तान कहा करता था।

राजा हिरण के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ मरघट की ओर जा निकला। ईश्वर अवधूत के रूप में खोपड़ियों को सामने रखे हुए, उनकी निरख-परख कर रहा था। राजा ने उसे घृणा से देखा और अप्रिय तथा घृणित शब्दों में बोला, "ओ बावले औघड़! क्या कर रहा है?"

अवधूत ने उत्तर दिया, "मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन खोपड़ियों में से कौन धनवान् की है और कौन कंगाल की! दूसरी बात यह है कि मैं पहिचानना चाहता हूँ कि इनमें से कौन बड़े कुल का था और कौन छोटे कुल का। तीसरी बात यह जानना चाहता हूँ, इनमें से कौन राजा की खोपड़ी

है और कौन भिखारी साधु की। चौथी बात यह जानना चाहता हूँ कि इनमें से कौन तेरा बाप था और कौन मेरा। यदि तू जानता है तो तू ही बता दे।"

राजा लज्जित हो गया। औधड़ को तो उसने बावला और उन्मत्त समझकर कुछ न कहा, परन्तु उस दिन से जाति-पाँति, छुटाई-बड़ाई, ऊँच-नीच का घमण्ड उसके मन से जाता रहा और उसने जीते-जी किसीको भूलकर भी कुछ नहीं कहा।

शब्द

1. ध्यान तक करता नहीं है, कोई मेरी बात का।
   क्या कहूँ! है भेद उनमें, और मुझमें दिन रात का॥
2. काल ने चोटी पकड़ रखी है, सब की हाथ में।
   फिर भी यह करते हैं झगड़ा, पाँत और ज़ात का॥
3. सबकी उत्पत्ति स्थिति, और लय की लीला एक है।
   जिसको देखा न्यून जीवन, कीड़ा था बरसात का॥
4. आये हैं सो जायेंगे, रहने नहीं आया कोई।
   ज्ञान होता ही नहीं है, इनको यम की घात का॥
5. यह सहेंगे कष्ट आपत, सुनने वाला कौन है।
   बात को कब मानता है, देवता जो लात का॥
6. पाँव से हैं रौंदते, दुःखी और दीन को।
   कोई कह सकता नहीं, अन्धेरे इस उत्पात का॥
7. राधास्वामी ने कहा, सब प्रेम के ही रस्ते चलें।
   ध्यान कोई करता नहीं है, सतगुरु की बात का॥

पत्र व्यवहार द्वारा ज्ञान

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

गोरखपुर निवासी श्री रामाशंकर लाल जी को
उनके पत्र का जवाब

प्यारे भाई रामाशंकर लाल जी :

राधास्वामी !

तुम्हारा काफ़ी लम्बा-चौड़ा आठ पृष्ठ का पत्र मुझे मिला। क्या उत्तर दूं ? मैंने आज तक जो कुछ लिखा या कहा, वह मेरा निज अनुभव है, किसीसे माँगा हुआ नहीं। आप हजूर दाता दयाल जी महाराज के शिष्य हैं। आपके प्रश्नों का उत्तर मैं दाता के ही शब्दों में देता हूँ। जिस प्रकार एक बच्चा—छोटा बच्चा ऊँची शिक्षा को नहीं समझ सकता और जिस-२ श्रेणी में वह पढ़ता है, उसका अध्यापक उसी श्रेणी के अनुसार ही उसको आगे पढ़ाता जाता है, उसी तरह मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता जाऊंगा। दाता कहते हैं :—

प्रेम छाया से किया, छाया का गुन जाना नहीं।
तूने अपना और उसका, रूप पहचाना नहीं॥
ब्रह्म में माया है शक्ति, शक्ति दुःखदायी कहाँ।
भरम से बलवान ने, बल पाके बल माना नहीं॥

माया छाया एक है, दौड़ो तो दौड़े और चले।
रुकने से रुकती है, उससे भय कभी खाना नहीं ॥
जान लो, पहचान लो, और अपनी शक्ति मान लो।
जान कर पहचान कर, भ्रान्ति में चित लाना नहीं ॥
राधास्वामी संग कर, कुछ दिन कि तुमको ज्ञान हो।
ज्ञान पा कर भूल के, चक्कर में फिर आना नहीं ॥
सजन कोई सांच न बात कहे ॥

योगाचार योग रस माते, क्षणिक ज्ञान क्षण भंगी।
मध्यम वाले मध्य समाने, शून्यवाद सरबंगी ॥
सांख्य गिनावे गिनती सबकी, योग समाधी गावे।
वेदान्त वेदान्ती की आशा, करम में करमी फँसावै ॥
जैसी मन की भई कल्पना, तैसा खेल खिलाया।
खटपट में षट् दर्शन भूले, अन्त मिला क्या छाया ॥
पूरा खेल किसी का नाहीं, खेलें खेल खिलाड़ी।
किसको बताऊँ पण्डित मूरख, किसको ज्ञानी अनाड़ी ॥
गुरु की दया साध की संगत, सार तत्त्व लख पाया।
राधास्वामी चरन कमल गह, छूटी माया छाया ॥

आपने अपने पत्र में लिखा है कि हजूर महाराज राय साहिब सालिग राम जी महाराज का रूप आपके अन्तर में प्रकट हुआ था, लेकिन आप उन्हें जानते नहीं थे और न ही उनको या उनकी फोटो को कभी देखा था। आपने इस घटना के विषय में दाता को लिखा था। उन्होंने आपको कहा था कि आप बहुत ही भाग्यशाली हो जो हजूर महाराज जी आपको सम्भालते हैं। अब आप मुझसे प्रश्न कर रहे हैं। उसका उत्तर सुनो :—

हजूर महाराज जी का जो रूप आपके अन्तर प्रकट हुआ था या हजूर दाता दयाल जी महाराज का जो रूप तुम्हारे या मेरे या अन्य सत्संगियों के अन्तर में प्रकट होता

हैं या मेरा जो रूप अन्य लोगों के अन्तर में प्रकट होता है, वह क्या है ? यह हरएक व्यक्ति की अपनी ही छाया है। जानते हो छाया क्या है ? एक तो पेड़ होता है दूसरी उसकी छाया होती है। आपके अन्दर हज़ूर महाराज जी का रूप क्यों प्रकट हुआ ? एक तो आपने हज़ूर महाराज जी का नाम सुना हुआ था और दूसरा आपके मन में यह बात बैठी हुई थी या संस्कार पड़ा हुआ था कि हज़ूर महाराज जी पूर्ण-धनी और परमसन्त थे और तीसरे क्योंकि हज़ूर दाता दयाल जी महाराज, उनका ध्यान करते थे और आप दाता दयाल जी महाराज का ध्यान करते थे, इसलिये हज़ूर महाराज जी का रूप आपके अन्तर में प्रकट हुआ। ऐसी-२ घटनाएँ मेरे साथ तथा नन्दू भाई जी के साथ भी घटती रहीं। मेरे अन्तर में भी स्वामी जी महाराज और हज़ूर महाराज जी का रूप प्रकट हुआ करता था। एक और किस्सा सुनाता हूँ :—

मेरे पास गोपाल दास नाम का एक सत्संगी रहता है। मेरे से मिलने से पहिले, जब कि वह मुझे जानता भी नहीं था, एक-दो सत्संगियों के साथ बैठकर अभ्यास करने लगा। एक बार अभ्यास करते समय उसके अन्तर में मेरा रूप प्रकट हुआ। वह मेरे पास आया और मुझे सारा किस्सा सुनाया। लेकिन मैं तो उसको जानता तक ही नहीं था। मेरा रूप उसके अन्दर कैसे प्रकट हुआ ? उसका कारण क्या था ? उसका कारण यह था कि जिन सत्संगियों के साथ गोपाल दास बैठकर अभ्यास करने लगा था, वे मेरा ही ध्यान करते थे। यह Law of Radiation है, लेकिन है यह सारे का सारा छाया पुरुष। यदि समझ सकते हो तो समझो, नहीं तो कुछ दिन मेरी संगत करो। संगत में क्या होता है ? यह बहुत ही सूक्ष्म विषय है, जिसे शब्दों में वर्णन नहीं

किया जा सकता। एक व्यक्ति के विचार या भाव प्रेम और दृष्टि द्वारा दूसरे के दिल में प्रवेश करते हैं। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा माँ की बात को तो समझता नहीं और न ही माँ बच्चे की बात को समझती है, क्योंकि वह बोल नहीं सकता, परन्तु जब वे दोनों प्रेम से एक-दूसरे की ओर देखते हैं और दोनों के दिल मिले हुए होने के कारण एक का अक्स दूसरे पर पड़ता है और दोनों एक-दूसरे के भाव को समझ लेते हैं। यह आपके एक प्रश्न का उत्तर है।

आपका दूसरा प्रश्न कि मैंने कहीं लिखा है कि हजूर दाता दयाज जी महाराज ने कहा है "वह गौतम बुद्ध थे और आप उनके भिक्षु थे और इसलिये ही इस जन्म में आपका मेल हुआ है।" दाता ने यह भी कहा था "आप पिछले किसी जन्म में हरगोबिन्द थे।" इससे क्या सिद्ध हुआ? "यह सिद्ध हुआ न कि महात्मा बुद्ध तथा हरगोबिन्द मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए।"

इस प्रश्न का उत्तर सुनो। ये बातें मुझे हजूर दाता दयाल जी महाराज ने कहीं। मगर मुझे इसके विषय में कोई ज्ञान नहीं। उन्होंने ऐसी बातें क्यों कहीं? यह तो वही जानते होंगे। लेकिन गौतम बुद्ध को मोक्ष नहीं मिला, इसका एक प्रमाण तो स्वामी जी महाराज की वाणी, जहाँ उन्होंने लिखा है कि राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा मसीह, हजरत मोहम्मद,, ये सब काल में रहे। मैं भी इसे मानता हूँ। क्योंकि जो व्यक्ति अपने मन के संकल्पों में रहेगा, वह किसी तरह भी अपनी हस्ती को खो नहीं सकता। उसका "मैंपना" चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक हो या आत्मिक हो, वह कहीं न कहीं अवश्य रहेगा या ठहरेगा, चाहे वह किसी लोक या स्थान पर ठहरे। जब तक कोई व्यक्ति या किसी की सुरत किसी रंग-रूप या विचार या

भाव के साथ बन्धी रहती है, उसकी हस्ती कायम है और जब तक यह हस्ती कायम है, वह हस्ती कहीं न कहीं तो ठहरेगी ही इसलिये मुक्ति कैसी ?

यदि मैं मान लूं कि जो पूर्वज मरे हुए हैं और यदि वे लोगों के अन्तर में सचमुच ही आते हैं, तो फिर यह मानना पड़ेगा कि वे पूर्वज अभी तक चक्र में हैं, मुक्त नहीं हुए हैं। कुछ वर्ष हुए मेरे साथ एक घटना घटी। भाई नन्दू सिंह जी और श्री पिंगल राव के साथ हजूर दाता दयाल जी महाराज मेरे vision में आये। दाता के हाथ में मेरी किताबें थीं। उन्होंने कहा, "फकीर पाँच सौ रुपये लाओ। मैंने ट्रंक में से पाँच सौ रुपये निकाल कर उन्हें दे दिये।" फिर उन्होंने कहा, "फकीर तेरा-मेरा वायदा था कि तुम्हें मञ्जिल तक पहुँचा कर मैं फिर निजघर जाऊंगा। अब मैं जा रहा हूँ।" वह बैठ गये और उनके शरीर को आग लग गई। शरीर जल कर राख हो गया और मैं बहुत ही दुःखी हुआ। उसके बाद कई बार दाता मेरे अन्तर में आये। यदि असली दाता दयाल जी जो मेरे अन्तर में आये थे, चले गये होते, तो फिर वह आते ही क्यों ? जो पाँच सौ रुपया दाता ने माँगा और मैंने दिया इसका क्या अर्थ है ? क्योंकि मैं मानवता मन्दिर के भवन का निर्माण कर रहा था, उसके लिए पैसे की आवश्यकता थी, मेरे मन में पैसे का विचार था। मेरा वही विचार vision में आया।

आपने लिखा है कि जब यह बड़े-२ सन्त और महात्मा स्वयं मुक्त नहीं हुए, तो वे दूसरों को मोक्ष दिलाने का वायदा क्यों करते हैं और कहते हैं कि यदि कोई उनकी शरण में आ जाय तो वह उसको बचा लेंगे।"

देखो भाई ! एक डाक्टर के पास एक बीमारी का नुस्खा है, जिससे कि बहुत से मरीज़ अच्छे हो चुके हैं, लेकिन यदि

वह डाक्टर स्वयं उसी रोग में ग्रस्त होकर मर जाता है, तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि वह दवाई ग़लत है। तुमने शरण में आने का अर्थ नहीं समझा। यदि तुम बीमार हो, तुम डाक्टर की शरण में चले जाओ, उसको पैसे दो, क्या तुम स्वस्थ हो जाओगे? स्वस्थ तो तुम तब तक नहीं होगे, जब तक उसकी बताई हुई दवाई नहीं खाओगे, उसके कहने के अनुसार परहेज़ नहीं करोगे। ऐसे ही गुरु दर्देदिल रखकर भूले और भटके हुए जीवों को उनका दुःख दूर करने के लिए कोई न कोई युक्ति बतलाता है। जो जिज्ञासु सत्संग में आकर भी, उसकी बात को नहीं सुनता, नहीं समझता, उस पर अमल नहीं करता, उसने सतगुरु की शरण नहीं ली। स्वामी जी महाराज कहते हैं :—

सब ही आये सतगुरु आगे दरस न पकड़ा बचन न लागे।
कहो अस सत्संग में क्या फल पाया, वक्त गया और
जन्म गँवाया॥

तुम्हारा तीसरा प्रश्न यह है कि यदि हम यह मान लें कि कबीर साहिब मुक्त हो गये, तो उन्होंने सो एक शब्द में कहा है।

जुगन जुगन हम आन चिताये कोई-२ हंस हमारा हो।

इसका पता तो कबीर साहिब को होगा। मैं तो समझता हूँ कि वह यह है सुनो! तुम्हें जब किसी व्यक्ति पर बहुत ही क्रोध आता है और उस क्रोध की अवस्था में तुम उसे कह देते हो, "मैं तुम्हारा खून पी जाऊंगा या मैं तुम्हारा सर्वनाश कर दूंगा।" यद्यपि तुम ऐसा करते नहीं, फिर भी क्रोध में कह तो देते हो। हो सकता है कबीर जुगन-२ में आते हों, परन्तु मुझे इसका पता नहीं है। जीवों को किसी बात पर विश्वास करने के लिए रोचक और भयानक बातें कहकर आकर्षित किया जाता है। लोग पसन्द भी रोचक

और भयानक बातों को करते हैं। कबीर साहिब ने जहाँ यह कहा है "जुगन-२ हम आन चिताये," वहाँ एक शब्द में यह भी कहा है :—

उत ते कोई न आइया, जा से पूछूँ जाय।
इत ते सब कोई जात है, भार लदाय-२ ॥

अब आप ही अन्दाज़ा लगाओ कि कबीर साहिब के दोनों शब्दों में कितना अन्तर है। एक शब्द में तो वह कहते हैं कि हम जुगन-जुगन में आकर चिताते हैं और दूसदे शब्द में कहते हैं कि उधर से कोई आता ही नहीं।

ऋषियों के कथन में भी भेद है और सन्तों की वाणियों में भी अन्तर है। जो इन वाणियों में फँसा वह भ्रम में पड़ा इसलिये बार-२ कहा जाता है कि अपने निजी अनुभव पर विश्वास करते हुए शान्ति को प्राप्त करो। राधास्वामी दयाल कहते हैं :—

आप आप को आप पहचानो, कहा और का नेक न मानो।

आपने मेरे किसी लेख को पढ़कर लिखा है, "फकीर ने राधास्वामी मत को मानव धर्म समझा है और समय आने पर यह मानव धर्म ही सिद्ध होगा।" हाँ मेरे प्यारे रामाशंकर लाल ! मैंने ठीक ही कहा है, ठीक ही समझा है। मानव कौन है ?

गुरुपशु नरपशु तिरियापशु वेदपशु संसार।
मानुष ताको जानिये, जा में विवेक विचार ॥

मानव जाति अपने अज्ञान के कारण ही नाना प्रकार के भ्रमों तथा संशयों में फँसी हुई है और इस कारण वह हर ओर से बँट गई है। यदि मानव को सच्चाई या असलियत का पता चल जाय कि वह है कौन, तो उसे शान्ति मिल सकती है। अब आप देखो तो कि न तो मैं किसी के अन्दर जाता हूँ, न हज़ूर दाता दयाल जी महाराज

जाते थे, न राम किसी के अन्दर जाते हैं न कृष्ण। परन्तु इस अज्ञान के कारण अनेक प्रकार के पन्थ और गद्दियाँ बन गईं मनुष्य जाति में घृणा फैल गई द्वेष फैल गया। हजूर दाता दयाल जी महाराज ने अपने अन्तिम सत्संग में यह कहा था कि लोग कहते हैं कि मेरा रूप उनके अन्तर में प्रकट हुआ और उनके लिए यह किया और वह किया। मगर मैं कहता हूँ कि मैं कहीं नहीं जाता। दाता मुझे सदा कहा करते थे, "फकीर! तुम अभी भी काल और माया से नहीं निकले। तुम मेरी बात मानते चले जाओ रहस्य किसी न किसी दिन तुम्हारी समझ में आ जायेगा।"

क्योंकि सन्तों ने इस असलियत के आधार पर अपने पन्थ चलाये कि यहाँ सब काल और माया का खेल है, यदि यह विचार फैल जाय तो लोग कर्म ही नहीं करेंगे। मेरा विचार है कि यह सन्तमत अभी किशोरावस्था में है। परन्तु यह फैलेगा! फैलेगा!! फैलेगा!!! सतयुग का दौर आयेगा किन्तु अभी कुछ देर है। हजूर दाता दयाल जी महाराज कहा करते थे, "फकीर! जहाँ दर्द है, वहाँ दवा भी है।" आपकी समझ में यह बात आ जाय तो ठीक है।

आपने एक और प्रश्न किया है कि पवित्र विभूति राय सालिग राम जी महाराज ने कहा था कि वह एक बार फिर सन्तमत में प्रकट होकर देश में सरकार और धर्मों के बिगड़े हुए हालात को सुधारेंगे। हजूर जी महाराज की भविष्य-वाणी कब तक पूरी होगी?

मेरे प्यारे रामाशंकर लाल! हजूर महाराज जी ने जो कुछ कहा उसके ठीक-२ भाव को तो वह ही समझते होंगे। किन्तु मैं जो समझता हूँ वह यह है क्योंकि हजूर महाराज जी के दिल में राधास्वामी पन्थ चलाने का प्रबल जज़बा था, इसलिये उस जज़बे में आकर उन्होंने ऐसा कहा।

हजूर महाराज बुढ़ापे में अपने मुँह में पानी भर कर वृक्षों पर छिड़का करते थे और कहा करते थे कि किसी समय यह वृक्ष भी राधास्वामी नाम जपा करेंगे। यह सब क्या था? उनका अपना ही जज़बा तो था। अब देखो न, वर्तमान समय में एमरजैन्सी ने कितना सुधार किया है। हजूर महाराज जी का जो विचार है, वह अवश्य फैलेगा और एक समय ऐसा आयेगा कि यह हेराफेरी करने वाले, चार-सौबीस करने वाले तथा भोले-भाले लोगों को अपने जाल में फँसाने वाले महात्मा तथा सन्त भी जेलों में जायेंगे। प्रकृति का यह नियम है कि जब किसी चीज़ की अति हो जाती है, वह सीमा से बढ़ जाती है, तो उसका विरोध करने वाला कोई न कोई पैदा हो ही जाता है। इसलिये ही हजूर महाराज ने यह कहा होगा।

आपने एक प्रश्न में किसी पुराण का हवाला देते हुए यह पूछा है कि प्रलय के समय पश्चिम से सात सूर्य इकट्ठे होकर चढ़ेंगे और दक्षिण में एक साथ ही अस्त हो जायेंगे और प्रलय हो जायेगी क्या यह सत्य है?

अरे भाई लाल साहिब! मुझे पता नहीं कि ऋषियों के पास ऐसी बात कहने का क्या अधिकार था। मैं तो बस इतना जानता हूँ कि जो वस्तु पैदा होती है, उसका नाश अवश्य होता है, "जो उपजे सो विनसे"।

प्रलय का वर्णन स्वामी जी ने भी किया है। काश आप इतना लम्बा पत्र लिखने तथा ढेर सारे प्रश्न करने के बजाय मेरे दो-चार सत्संग सुन लिये होते। पत्र में या लेख में सारे भाव नहीं आ सकते। आप मेरे गुरुभाई हैं, इसलिये इस नाते मैं आपको पत्र लिख रहा हूँ अन्यथा पत्र लिखने की ज़रूरत ही नहीं थी।

एक प्रश्न में आपने लिखा है कि राधास्वामी मत की

वाणी में या कबीर साहिब या गुरु नानक जी ने अनेकों सूर्यों का वर्णन किया है लेकिन आपने केवल नीले, पीले और लाल रंग के तीन सूर्य ही अपने अन्तर में देखे हैं और वे भी चमकीले नहीं। सुनो मेरे प्यारे ! स्वामी जी की वाणी है :—

अखतरो शमशो कमर, सर पे चमकते थे कभी।
आज इन सब की ज़िया, ज़ेरे क़दम देखते हैं॥

आपने मुझे लिखा था कि आपके अन्दर प्रकाश नहीं होता और मैंने आपको जवाब दिया था कि आप शारीरिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य रखने पर बल दें। आपका विवाह 16-17 वर्ष की आयु में हो गया था आपने खूब गृहस्थ भोगा, दो लड़के तथा तीन लड़कियों के बाप बने। फिर स्त्री का स्वर्गवास हो गया। अब आप शारीरिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य रखते हैं, परन्तु इसमें कभी-२ आप गिर जाते होंगे, इसलिये आप अन्तर में प्रकाश न होने के कारण दुःखी हैं आप चाहते हैं कि आपके अन्तर में प्रकाश हो। आप शब्द का साधन अभी कुछ समय के लिए छोड़ दें और केवल ध्यान की ओर बल दें। सुरत शब्द को पकड़ लेती है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है और आकाश से अग्नि पैदा होती है। इसलिये जो व्यक्ति शब्द का ही साधन करेगा, उसके अन्दर प्रकाश कैसे आयेगा। यदि आयेगा भी तो बहुत ही कम आयेगा। क्यों ? क्योंकि वह व्यक्ति तो प्रकाश से भी ऊपर चला जाता है। इसलिये यदि आप प्रकाश देखना चाहते हैं, तो शब्द का साधन आपको छोड़ना पड़ेगा। आपने लिखा है कि पहिले आप जो घण्टा, शब्द, ओम् या ढोल की आवाज़ें सुना करते थे, वे सब समाप्त हो गये हैं। यह तो होने ही चाहिएँ। मैंने एक किताब 'पाँच नाम और पाँच स्थान' लिखी है वह आपको भेज रहा हूँ।

उसमें मैंने घण्टा, शंख, बादल की गरज, मुरली और बीन आदि जितनी भी आन्तरिक आवाज़ें हैं सबके पैदा होने का असली कारण बताया है। मेरी अब यह दशा है कि मैं यदि अब घण्टा, शंख, ढोल या मुरली की आवाज़ सुनना भी चाहूँ तो नहीं सुन सकता। क्यों? क्योंकि जिस प्रकृति से ये शब्द बनते हैं या पैदा होते हैं मैं उस प्रकृति से बहुत आगे चला गया हूँ।

आपके अभ्यास में कोई कमी नहीं है। कमी केवल इस बात की है कि आपको सत्संग नहीं मिला। हज़ूर दाता दयाल जी महाराज ने अपनी एक पुस्तक "अद्भुत उपासना योग" नामक पुस्तक में लिखा है कि जब किसी व्यक्ति के अन्तर में बीन बजने लगे और प्रकाश और शब्द आ जाय, तब किसी सतपुरुष की तलाश करनी चाहिए। यह प्रकाश और शब्द लक्ष्य पद नहीं हैं ध्येय तो मन तथा सुरत की शान्ति ही है। इसलिये घबराओ मत सत्संग करो बस।

आपने लिखा है कि मैं आपके दोषों को क्षमा करके आपका मार्ग-दर्शक बनूं ताकि आपका बाकी जीवन सफल हो जाय। आपके लेख के अनुसार हज़ूर दाता दयाल जी महाराज ने आपको यह कहा भी कि यह उनका और आपका अन्तिम मिलाप है और आप अपना काम बना लो। मगर आप चूक गये। पहिले सन्त लोग समझाने के लिए केवल संकेत ही करते थे और उनके संकेतों को समझना कोई आसान काम नहीं था। मैंने आपको बताया है कि आपके साधन में कमी नहीं है यदि कमी है तो सत्संगों की है। मुझे आपके साथ सहानुभूति है। यदि हो सके तो कुछ दिन के लिए मेरे पास आकर रहो। आप सत्तर साल के बूढ़े हो और मैं इकासी साल का बूढ़ा हूँ। आखिर में आपको लक्ष्य पद बता देता हूँ जो हज़ूर दाता दयाल जी महाराज ने मुझे

बताया। इस शब्द को ध्यान से पढ़ो :—

जिसके मन नहीं चिन्ता व्यापे, जग में वही है दास फकीर ॥
अभय रहे, चित गुरु पद राखे, धीर वीर गम्भीर।
शान्त भाव व्यवहार परमारथ, कभी न हो दिलगीर ॥
अपनी पीर न उर में साले, लखे पराई पीर।
पर की पीर न जिसे सताये, सो अधरम वे पीर ॥
अपना रूप सम्भाले पल पल, काट मोह जंजीर।
यह फकीर है गुरु को प्यारा, महावीर चित धीर ॥
चाह गई चिन्ता सब भागी, आया भव निधि तीर।
हंस रूप धर त्याग नीर को, गह लिया ज्ञान का क्षीर ॥
राधास्वामी गुरु का सच्चा बालक, पहर बिराग का चीर।
तन के रहते मुक्ति विदेही, सहे न द्वन्द्व शरीर ॥

मेरे प्यारे भाई ! मुझे शान्ति कैसे मिली ? शान्ति मिली केवल इस विचार से कि मैं कौन हूँ। मालिक एक तत्त्व है, जिसमें हिलोर उठती रहती है। लोक-लोकान्तर, सूर्य, चाँद, सितारे और धरती आदि बनते और बिगड़ते रहते हैं। मैं कौन हूँ ? चेतन का एक बुलबुला, जो उसकी मौज से बना, जब उसकी मौज होगी बुलबुला टूट जायेगा और अपने आद में मिल जायेगा। मुझे तो सारे जीवन की दौड़-धूप के बाद यहाँ आकर ही शान्ति मिली। यह भी मालिक की मौज है। मेरे प्यारे रामाशंकर ! मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि मालिक आपको शान्ति दें। मेरे पास तो शुभकामना ही है, वह देता हूँ।

आपका फकीर

मासिक सत्संग

परमसन्त हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मानवता मन्दिर, होशियारपुर 21-10-90

'राधास्वामी मत का सार'

सन्तमत मारग झीना है, हाँ
त्याग स्थूल सूक्ष्म गति निरखे, फिर कारन की बारी।
कारन तज महाकारन धावे, तब समझो अधिकारी॥
धरम करम त्यौहार न छोड़े, ढूँढ़े सार न इनमें।
सुरत शब्द में सार छुपा है, करे प्राप्त सो तिन में॥
संजम नियम जप तप कर्मा, नहीं किंचित् कठिनाई।
सहज योग की सहज रीति है, सहज ही सहज भलाई॥
सतगुरु सत्तनाम सतसंगत, समझ सहज में धारे।
फिर अन्तर में करे चढ़ाई, जड़ चेतन निखारे॥
राधास्वामी ने भेद बताया, सुरत शब्द मत गाया।
सुरत शब्द मत सबका टीका, सुरत में शब्द को पाया॥

सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-गोचरं तमगोचरम्।
गोविंदं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम्॥
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सद्गुरुरूप सत्संगी भाइयो और बहनो !

आज का यह सत्संग कार्तिक मास का सत्संग है। इस कार्तिक महीने की मैं आपको सद्भावना देता हूँ। सीता देवी ने स्वामी महाराज का कार्तिक मास का शब्द पढ़ा। इस शब्द में स्वामी जी महाराज ने कार्तिक महीने की महिमा बताई है। स्वामी जी महाराज ने जब मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के समन्वित रूप को देखा, तो विचार किया कि मनुष्य अपने आप में पूर्ण है। इसके अन्दर पिण्ड, अण्ड, ब्रह्माण्ड, पराब्रह्माण्ड, परमतत्त्व सब मौजूद हैं। उन्होंने अपने शब्द में कमलचक्रों की व्याख्या की है। इस व्याख्या से साफ ज़ाहिर है कि सन्तमत बहुत सूक्ष्म है। उसके अन्दर गहराई छिपी हुई है। वैसे यह कोई नई बात नहीं है। जिन द्वादश चक्रों का स्वामी जी महाराज ने ज़िक्र किया है, उन सभी का ज़िक्र दूसरे सिद्धान्तों ने भी किया है।

इन चक्रों का सिलसिला इसलिये भी बताया गया है कि जो आद्या शक्ति, परमतत्त्व की धारा ऊपर से बही, उसने यह सारा जगत्, सौरमंडल, कोटि-२ ब्रह्माण्ड बनाये। ये जगत् के अन्दर भी हैं और मनुष्ग में भी हैं। इसलिये मनुष्य को पूर्ण कहा गया है। जितनी और योनियाँ हैं, प्राणी हैं, जड़-चेतन हैं, उन सबके मुकाबले में मनुष्य को सर्व-श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि यदि कोई ईश्वर का इस जगत् में जीता-जागता नमूना है, तो वह मनुष्य है। इस बात को हमारे ऋषियों ने शुरू से ही अनुभव किया और अनुभव के बाद उन्होंने कहा—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

मालिक, सर्वाधार, परात्पर ब्रह्म, दयाल पुरुष अपने आप में पूर्ण है। उसमें कोई कमी नहीं है। पूर्णमदः पूर्णमिदं मालिक भी पूर्ण है और मनुष्य भी पूर्ण है। स्वामी जी महाराज ने कहा है—सूफी और वेदान्ती दोनों नीचे जान। मैं सूफियों के बारे में अधिक नहीं जानता, लेकिन इतना जानता हूँ कि वह इसे प्रेम का मार्ग कहते हैं। सूफी हृदय-चक्र से शुरू करते हैं। जहाँ तक वेदान्त का सवाल है, बिना वेदान्त के सन्तमत को नहीं समझा जा सकता और सन्तमत के अभ्यास के अंग के बिना वेदान्ती कोरा रह जाता है। वेदान्त और सन्तमत एक-दूसरे के पूरक हैं। स्वामी जी महाराज की बात से यह नहीं समझना चाहिए कि वेदान्त नीचे रह गया। नीचे रहने का मतलब है कि वेदान्त पर चलने वाले, जो अपने आपको ज्ञानी समझते हैं, उन्होंने वेदान्त की सच्चाई को, वेदान्त के इष्ट को नहीं समझा। वेदान्त का इष्ट तो वही है, जो इष्ट सन्तमत का है। लेकिन वेदान्त पर चलने वालों ने उस अवस्था को न समझकर जिस अवस्था पर पहुँचकर वेदान्ती कहता है 'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या' ब्रह्म पूर्ण है और यह जगत् उसके मुकाबले में अपूर्ण है। वेद उपनिषद् भी कह रहे हैं कि वह भी पूर्ण है और यह भी पूर्ण है, लेकिन उस पूर्णता को तुम्हारी दृष्टि नहीं समझ रही। तुम उसको उस दृष्टि से नहीं देख रहे, जिस दृष्टि से ऋषि ने अनुभव करके कहा था, ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या। जब मैं संस्कृति से M.A. कर रहा था, उस समय हमें डा० सूर्यकान्त वेद पढ़ाते थे। डा० सूर्यकान्त पंजाब विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर थे। एक बार उन्होंने मेरे से कहा, "ईश्वर ! तुम एक यमयमी मन्त्र की व्याख्या करो।" इस मन्त्र में कामवृत्ति की पूरी व्याख्या है। इस मन्त्र को पढ़कर लोग कहते हैं कि वेदों में अश्लीलता

है। मैंने कहा, "वेद के इस मन्त्र की व्याख्या करने से पहिले मैं कुछ कहना चाहता हूँ। जिस ऋषि ने यह मन्त्र लिखा है वह बहुत ऊँची दृष्टि से लिखा है। इस मन्त्र का अर्थ समझने के लिए, हमें पहिले अपनी दृष्टि को बहुत ऊँचा करना होगा तब इसका अर्थ समझ में आयेगा, क्योंकि ऋषि किसीके भाव को व्यक्त कर रहा है।" इस प्रकार मैंने पूरे मन्त्र की व्याख्या कर दी। ऋषियों के मन साफ थे, शिवसंकल्प थे, इसलिये जब वह यज्ञ करते थे तो देवता प्रकट हो जाते थे। उनकी दृष्टि ऊँची थी, उनका स्तर ऊँचा था। वह पहुँचे थे। मैंने कहा कि आप जब ऊँची दृष्टि से देखोगे, तब आपको इस मन्त्र में अश्लीलता नहीं दिखाई देगी। वेदों के अन्दर कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे आपको शर्मसार होना पड़े। हमें तो शर्मसार इसलिये होना चाहिए, क्योंकि हमने वेद पढ़े नहीं हैं। हमारे वेदों और उपनिषदों में सच्चाई भरी है। वेदान्त वेदों से निकला है। वेदान्त ऋषियों के अनुभव से ऊपर नहीं है। ऋषियों के अनुभव को लेफर एक ऋषि ने ब्रह्मसूत्र लिखा। इस ब्रह्म-सूत्र की टीका शंकराचार्य ने लिखी। शंकराचार्य जी परम-भक्त थे और शंकर का अवतार थे। अन्त में शंकराचार्य भी अदृश्य हो गये थे अर्थात् उनका शरीर भी गायब हो गया था। शंकराचार्य ने वेदों और उपनिषदों का अंकन किया और अपने अनुभव के आधार पर बताया कि वेदों और उपनिषदों में सच्चाई है। मनुष्य पूर्ण है। यह जगत् भी पूर्ण है। एक दृष्टि से पूर्ण है क्योंकि वह पूर्ण से निकला है।

'पूर्णात् पूर्णमुदच्यते'

पूर्ण से निकलने के कारण मनुष्य पूर्ण है। कभी भी अपने अन्दर हीनभाव मत रखो। ये द्वादश चक्र तुम्हारे अन्दर मौजूद हैं, इसलिये कभी हीनभाव की आवश्यकता

नहीं।

तू तो थी सतपुरुष की अंशी,
गोत लजाया शर्म न आई।

यह वाणी स्वामी जी महाराज की है। हमें इस बात का गौरव होना चाहिए कि हम मनुष्य-चोले में हैं। मनुष्य अपने आपको भूला हुआ है, भूल-भरम में पड़ा हुआ है। उस भूल-भरम को मिटा देना, मिथ्यात्व को हटा देना, मिथ्यात्व के पीछे जो सच्चाई है, उसको दिखा देना, इस नाशवान् जगत् के पीछे जो अविनाशी छुपा हुआ है, उसको दिखा देना ही गुरु का काम है। परम दयाल जी महाराज कहते थे "तुम्हारा जीवन कैसा होना चाहिए? तुम्हारा लक्ष्य क्या होना चाहिए? तुम्हें बेफिक्र, बेगम और अडोल होना चाहिए। तुम्हारा कौन बिगाड़ कर सकता है? जब तक तुम्हें यह पता नहीं चलेगा कि मैं अविनाशी हूँ, तब तक बेफिक्र, बेगम, अडोल नहीं रह सकते। वैसे तो शराब के नशे में भी व्यक्ति बेफिक्र रहता है। लेकिन बेफिक्री, बेगमी, अडोलपना, स्थिर रहना, उस अवस्था में रहना, जब तुम राधा और स्वामी, सुरत और शब्द को पहिचानोगे और तुम उस स्तर पर पहुँच जाओगे जो आध्यात्मिकता का स्तर है। इसलिये अनुभवशील सद्गुरु की ज़रूरत है, सत्संग की ज़रूरत है, फिर सतनाम की ज़रूरत है। शुरू में गुरु, बीच में करनी और बाद में फिर रहनी के लिए सत्संग की ज़रूरत है। दाता दयाल जी महाराज ने कहा, "लोग मेरे पदों को पढ़कर कहते हैं कि सन्तमत वेदान्त का विरोध करता है।" यह बात ग़लत है। सन्तमत वेदान्त का विरोध नहीं करता। वेदान्त को समझे बिना सन्तमत पर नहीं चला जा सकता। बेफिक्री, बेगमी और अडोलपना नहीं आ सकता। वेदान्त में मिथ्यावाद कहा है "ब्रह्म सत्यम्

जगन् मित्थ्या" परमतत्त्व ही सत्य है और यह जगत् ऐसा सत्य नहीं है जैसा तुम समझ रहे हो। यह उसका आभास है, इसको आभास कहते हैं। इसका जो अस्तित्व है, सत्ता है, वास्तविकता है, उसकी सीमा है। लेकिन सीमा के अन्दर भी वह बहुत ही अद्भुत व आकर्षक है। वह धारा जो राधा है, इतनी आकर्षक है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ पर मैं दाता दयाल जी महाराज के एक शब्द की व्याख्या करना चाहता हूँ।

धन्य-धन्य गुरु परम सनेही, धन्य दीन हितकारी।
धन्य कृपाला सहज दयाला, भवभय मेटनहारी ॥
लीला अगम अपार अमाया, अद्भुत क्या कोई जाने।
ऋषि मुनि योगी पार न पावें, ज्ञानी नहीं पहचानें ॥

इस शब्द के माध्यम से भी आपको उस मालिक की लीला का बहुत कुछ पता लग सकता है। लीला अगम अपार अमाया है और वो माया है जिसका मायाभाव, जगत् की माया है और वही योगमाया, सृजन शक्ति है जो जगत् में फैली हुई है। यह जगत् उस मालिक का फैलाव है, प्रसार है। उसकी लीला अगम है, अपार है। उसकी लीला का कोई पारावार नहीं है। इस जगत् का भी कोई पारावार नहीं है। कितने सौरमंडल हैं, कितनी आकाशगंगाएँ हैं। यह आकाश जो आपको नीला दिखाई देता है वह वास्तव में नीला नहीं है। आकाश काला है। नीला हमें इसलिये दिखाई देता है कि हमारी पृथ्वी का जो प्राणमय कोष है, उसमें अनेक प्रकार की गैसें हैं, इन गैसों के कारण हमें आकाश नीला दिखाई देता है। हमारे वेद शास्त्र भी हमें यही बताते हैं कि तारे काले आकाश के अन्दर चमकते हैं। नीले आकाश के अन्दर नहीं चमकते। जब आप समाधि में जाओगे, तब भी आपको चाँद सितारे दिखाई देंगे। अमेरिका

के तीन व्यक्ति चन्द्रमा पर गये थे। उन्होंने बताया कि जब हम पृथ्वी से दूर गये तो पृथ्वी के पहाड़, समुद्र सब मिलकर एक हो गये थे और सभी नीले रंग के दिखाई दे रहे थे। यह जगत् बहुत सुन्दर है। मगर आकाश काला है क्योंकि ऊपर अन्धेरा ही अन्धेरा है। इस जगत् को बनाने वाले मालिक का भी पारावार नहीं हैं। लीला अगम अपार अमाया। माया से भी परे 'अद्भुत क्या कोई जाने'। उसकी धारा इतनी अद्भुत है, इतनी आकर्षक है कि हैरान कर देती है। इसका कोई मुकाबला नहीं होता। हैरत, हैरत, हैरत। मनुष्य हैरान हो जाता है कि आखिर यह क्या चीज़ है? ऐसी इस जगत् की लीला है। हम उस मालिक की माया तक भी नहीं पहुँच सकते।

ऋषि मुनि योगी पार न पावें, ज्ञानी नहीं पहचानें।

ऋषियों ने तपस्या की, अनुभव किया, लेकिन फिर भी वह इसे पूरी तरह से नहीं जान सके। नेति-२ कह दिया। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। हाँ! योगी भी योग-साधना तक रहते हैं। 'ज्ञानी नहीं पहचानें' जो अपने आपको ज्ञानी समझते हैं, वह भी नहीं पहिचान पाते। ज्ञानी कहता है ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या। मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। अब नहीं पहचानें का क्या मतलब है? मैं ब्रह्म हूँ का अर्थ है कि मैं शरीर की मैं नहीं, मन की मैं नहीं, आत्मा की मैं नहीं और जो सुरत की भी मैं नहीं है वह मेरा असली आपा है। वह अविनाशी तत्त्व जो सब अनुभवों के अन्दर अनुभव करने वाला है, उसे देखा नहीं जा सकता, लेकिन देखने वाला है। तुम उसे नहीं देख सकते, लेकिन देखते किसलिये हो क्योंकि देखने वाला बैठा है। उसका चिन्तन नहीं किया जा सकता, सोचा नहीं जा सकता, लेकिन वह सोचने वाला है वरना आप सोच नहीं सकते।

सोचे सोच न होई, जो सोचे लख वार।
चुप्पे चुप न होई, जो चुप्पे लख वार॥

अरे चुप का मतलब है शान्ति। शान्ति को अनुभव करने वाला कौन है? शान्ति को अनुभव करने वाला वो ही है जो स्वप्न को देखने वाला है, सुषुप्ति के अन्दर आनन्द को अनुभव करने वाला है, आनन्द से परे परमानंद को अनुभव करने वाला प्रकाश और शब्द के अन्दर जाने वाला है। शब्द के अन्दर जगत् की कोई सीमा नहीं है। वहाँ पर पूरी आज़ादी है। पूर्णता क्या है? मुक्ति क्या है? जहाँ पर कोई सीमा न हो। वही अवस्था पूर्णता की अवस्था है।

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, वाको काल न खाय॥

इसका मतलब यह नहीं कि जाप करो ही मत। जाप किसलिये करते हैं, ताकि हम उस मालिक से प्यार कर सकें और उसके अन्दर मिल सकें। जाप किसका करोगे? जाप उसका करोगे, जो सद्गुरु का दिया हुआ सतनाम होगा। सतनाम सच्चा नाम है, उसका नाम है, जो अनामी है। सतनाम धुनात्मक होगा, जिसका बार-२ जाप करने से तुम उसीके जैसे हो जाओगे। समाधि का लक्ष्य, प्यार का लक्ष्य क्या होता है? जिससे प्यार करते हैं, वैसे ही बन जाना। यह ज़रूरी नहीं कि तुम मेरा ही ध्यान करो। अरे जिससे भी प्यार करते हो, उसका ध्यान करो मगर उसे परमतत्त्व मानकर करो। मैं आपको एक बात बताना चाहता हूँ।

एक अंग्रेज ने 'लामाओं के अजूबे' नाम से एक किताब लिखी है। उसमें एक किस्सा आया है—एक तिब्बती लामा के पास समाधि ध्यान सीखने गया। लामा ने पूछा, "तू क्या करता है?" उसने कहा, "मेरे पास एक पहाड़ी बैल है,

जो बहुत मज़बूत है। मैं उसीसे काम लेता हूँ, उसी पर चढ़ता हूँ, उसीसे मेरी आमदनी होती है।" लामा ने कहा, "तू गुफा में जाकर बैठ जा और अपने बैल पर ध्यान लगा।" वह व्यक्ति अपने बैल पर ध्यान लगाने लगा। जब कई महीने गुज़र गये, तो लामा ने आकर आवाज़ दी, "मेरे प्यारे शिष्य! बाहर आ जा।" मगर उसने सुना नहीं। इस प्रकार लामा ने कई बार पुकारा मगर वह बाहर नहीं आया। अन्त में लामा अन्दर गया और उसके कान में गर्म घी डाला, तब उसे कुछ होश आया। लामा ने उसे बाहर आने के लिए कहा। उसने कहा, "मैं बाहर कैसे आऊँ, मेरे सिर पर सींग हैं, वह दरवाज़े में अड़ जायेंगे। इसलिये मैं बाहर नहीं आ सकता।" लामा ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा कि अब तेरे सींग नहीं हैं, तू बाहर आजा।" तब वह तिब्बती व्यक्ति बाहर आया।

जब एक बैल पर ध्यान लगाने से वह बैल बन गया, तो जब तुम सद्गुरु के चेहरे पर ध्यान लगाओगे तो क्या सद्गुरु जैसे नहीं बनोगे!

जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, वाको काल न खाय॥

जाप, अजपाजाप से परे, अनहद भी मर जाये अर्थात् अनहद शब्द भी समाप्त हो जाये। सुरत समानी शब्द में वाको काल न खाय। अब शब्दाभ्यास से, शब्द के अन्दर जाने से सबकी 'मैं' समाप्त हो गई, लेकिन शब्द की मैं तो रह गई। शब्द का सुनना, अभ्यास का करना, अभ्यास नहीं बल्कि अभ्यास को करने वाला, प्रकाश नहीं प्रकाश को देखने वाला, शब्द को अनुभव करने वाला, स्वयं अविनाशी तत्त्व है और वह अविनाशी तुम हो। वह तुम्हारी 'मैं' है। तुम्हें उस अवस्था में पहुँचना है। ऐसा जो हमारा आपा है

यह हम हैं। इसमें कोई शक नहीं कि हम पूर्ण हैं क्योंकि हम पूर्ण से आये हैं। अब जो इस पूर्ण को समझ गया उसे पूर्ण का अनुभव हो जायेगा। यह है इस वेदान्त के शब्द का निचोड़। 'ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या।' मिथ्या क्या है? तुम्हारे शरीर का अनुभव नहीं, बल्कि शरीर का अनुभव करने वाला, तुम्हारे स्वप्न को देखने वाला ही सत्य है, बाकी सब मिथ्या है। यह मिथ्या इसलिये सच दिखाई देता है कि इसके अन्दर सच देखने वाला, अनुभव करने वाला, सच्चा प्यार करने वाला परमतत्त्व बैठा हुआ है। मैं आपको आसान तरीके से बता रहा हूँ। वह सत्य है। सत्य इसलिये है कि वह इसके अन्दर मौजूद है। इसलिये जगत् अपने आप में सत्य नहीं है।

इस जगत् का जो मिथ्यात्व है अर्थात् इसका जो झूठापना है, वह इसलिये सच दिखाई देता है कि उसके अन्दर सच्चा अविनाशी तुम्हारा तत्त्व बैठा है जब जाग्रत में होते हो, तो वह जाग्रत के अनुभव को सत्य बनाता है। जब स्वप्न में होते हो, तब स्वप्न को सच बनाता है। जब सुषुप्ति में होते हो, तब आनन्द की अवस्था को सच बनाता है। इसलिये वेदान्त में कोई ग़लती नहीं, लेकिन उसके समझने में ग़लती है। आगे आने वालों ने ऐसी व्याख्या की कि उसकी बाल की खाल उतार दी और कहने लगे अहं ब्रह्म अस्मि यदि तुम उस अवस्था में पहुँच गये हो तो तुम कह ही नहीं सकते। यदि तुम 'अहं ब्रह्म अस्मि' कह रहे हो, तो तुम उस अवस्था में पहुँचे ही नहीं हो। ब्रह्म के अन्दर, परमतत्त्व के अन्दर, अविनाशी के अन्दर, दयाल अनामी के अन्दर कोई कर्म करने की ज़रूरत नहीं रहती। क्योंकि कर्त्ता, कर्म और कारण सब समाप्त हो जाते हैं। हाँ! यह साधन है, सीढ़ियाँ हैं। अगर तुम 'अहं ब्रह्म' कर रहे हो, तो अभी तुम सीढ़ी पर हो। जो वेदान्ती यह समझते हैं कि

मैं ऊँचा पहुँच गया, वह भूल कर रहा है। क्योंकि उन्होंने इष्ट नहीं किया। हालाँकि शंकराचार्य ने तो इष्ट बताया था, लेकिन आगे आने वाले अनुयायियों ने इष्ट नहीं बताया। जहाँ पर इष्ट आ जाता है, जहाँ पर हमने किसी एक को मान लिया कि यह हमारा लक्ष्य है, जिसे हमें मिलना है, उसे ही प्यार करना है। उसी सद्गुरु के शरीर की सेवा, मन की सेवा, धन की सेवा करने के बाद उसका सुमिरन ध्यान करना है, जब ऐसा होगा, तब तुम लामा के शिष्य की तरह सद्गुरु का रूप बन जाओगे। इसमें कोई शक की बात नहीं है। मैंने सरल रूप में आपको बताया है।

लीला अगम अपार अमाया, अद्भुत क्या कोई जाने।
ऋषि मुनि योगी पार न पावें, ज्ञानी नहीं पहिचानें॥

ज्ञानियों की समझ में भी उस मालिक की लीला पूरी तरह से नहीं आई। वैसे ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है। आखिरी अवस्था पर पहुँचने के बाद भी महाराज जी ने क्या कहा? महाराज जी ने कहा, "मुझे ज्ञान कब हुआ, जब मैंने गुरु की आज्ञा का पालन किया और मुझे सत्संगियों में साक्षात् परमतत्त्व मिला।

क्या कह करूँ तुम्हारी स्तुति, अजर अमर अविनाशी।
निरालम्ब सब के आधारा, चेतन घन सुख राशी॥

यह उस मालिक का स्वरूप है, जिसे हम ढूँढ़ने निकले हैं। उस मालिक की क्या स्तुति की जाये। कितनी भी कोशिश की जाये, मगर सद्गुरु की स्तुति नहीं की जा सकती। वह स्तुति सुनने के लिए बैठा ही नहीं है। उसकी निन्दा करो, तब भी उसे परवाह नहीं। तुम निन्दा से भी उसको पा जाओगे।

क्या कह करूँ तुम्हारी स्तुति, अजर अमर अविनाशी।

गुरु को अजर, अमर, अविनाशी समझो। वह अमर

है। उसका कभी नाश नहीं होता। उसकी क्या स्तुति की जाये? उसकी स्तुति करना बेवकूफी है। भाव और प्रेम के कारण और बात है। मीरा ने भगवान् कृष्ण को साक्षात् व्यक्ति मानकर स्तुति की अर्थात् उसने पहिले कृष्ण के सगुण रूप को माना, लेकिन अन्त में क्या कहा उसने—

मीरा कहे प्रभु कबहुँ मिलोगे, अजर अमर अविनाशी रे।
क्या कह करूँ तुम्हारी स्तुति, अजर अमर अविनाशी।
निरालम्ब सबके आधारा, चेतन घन सुख राशी॥

यह सद्गुरु का असली स्वरूप है। निरालम्भ वह किसी और पर निर्भर नहीं है। वह आज़ाद है। सर्वाधार है। 'निरालम्ब सबके आधारा' वह दूसरों का भी आधार है। गुरु को अपना आधार बनाओ। 'चेतन घन सुख राशी', वह सिर्फ चेतन नहीं, बल्कि वह चेतन का भी घनत्व है, चेतना से भरपूर है। चेतना, अर्द्धचेतना, तूरीया अवस्था, शान्ति की अवस्था, सब कुछ उसके अन्दर है। इसलिये उसे 'चेतनघन' कहा जाता है। चेतनघन सुखराशी वह परमसुख का भण्डार है।

मैंने आपको मंगलाचरण सुनाया।

सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-गोचरं तमगोचरम्।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुम् प्रणतोस्म्यहम्॥

जो आपको आनन्द से परे परमानन्द की अवस्था में ले जाता है। 'सद्गुरुम्प्रणतोस्म्यहम्।' उस सद्गुरु को प्रणाम है जो परमआनन्द है, चेतनघन है और परमसुख को देने वाला है। तुम सुख ढूँढ़ते हो, वह परमसुख का आधार सर्वाधार है। तुम्हारा जब ऐसा इष्ट होगा, तब तुम वेदान्त से परे जा सकते हो। अगर वेदान्ती सद्गुरु को लक्ष्य बना लें, तो पार जा सकते हैं। इसी प्रकार अभ्यासी, अगर

वेदान्त की बात को समझ ले, तो वह अभ्यासी पूर्ण हो सकता है। इसलिये मैं आपको बता रहा था कि वेदान्त और सन्तमत एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों साथ-२ चलते हैं। दोनों का लक्ष्य एक है।

सन्तमत मारग झीना है।
त्याग स्थूल सूक्ष्म गति निरखे, फिर कारन की बारी।

अब यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण क्या है? शरीर, मन और आत्मा, ब्रह्मा,विष्णु और शिव। विराट्, अव्याकृत और हिरण्यगर्भ। ये तीनों स्थूल से पहिले हैं। सद्गुरु के स्थूल रूप से भी आपका प्रारम्भिक काम हो सकता है, लेकिन उसकी निकटता ज़रूरी है और निकटता के लिए उसकी शारीरिक सेवा ज़रूरी है।

साधु की संगत गुरु की सेवा, सहज ही काम बनावे।
जिस पर साधु की दृष्टि पड़ गई, फिर जग योनि न आवे॥

सद्गुरु के नज़दीक आये, उसे लक्ष्य माना, मगर सद्गुरु के शरीर को भी परमतत्त्व, अजर, अमर, अविनाशी मानो। सन्तमत के तीन सोपान हैं—1) सद्गुरु 2) सतनाम और 3) सत्संग। आपने गुरु की सेवा की। आपकी सेवा से वह प्रसन्न होकर आपको रास्ता बतायेगा, तुम्हें सतनाम देगा। आपने उसकी बाहरी संगत की, प्रेम किया, इससे वह आपको आन्तरिक प्रेम बतायेगा। सद्गुरु जो आपको सतनाम देगा उसके तीन सोपान हैं, सुमिरन, ध्यान और भजन।

सुमिरन का मतलब है कि उसको याद करो। सुमिरन करने से तुम्हारा शरीर, मन और आत्मा स्थिर हो जायेंगे।

'तन थिर मन थिर सुरत निरत थिर।'

जब स्थिर हो जाओगे, तब एकाग्र भी हो जाओगे।

एकाग्र होने से, तुम्हारे अन्दर उसका भाव आयेगा, जिसका तुम ध्यान कर रहे हो। सद्गुरु एक डाक्टर है। बहुत अच्छी बात है कि आपको डाक्टररूपी सद्गुरु मिल गया। पहिले तो आप यह मानो कि बीमार हो। इस जगत् में आना बड़ी भारी बीमारी है। आपको सद्गुरु मिल गये। अब सद्गुरु ने आपको नाम दिया। यह नाम आपको मुकम्मलता का अनुभव करा देगा। यह नाम धुनात्मक होगा अब गुरु आपको सुमिरन, ध्यान, भजन करने को कहेगा। सन्तमत में तीन बन्ध हैं—

तीन बन्ध लगायकर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाधि में, नहीं साँझ नहीं भोर॥

यह सुन्न समाधि वह नहीं, जो दसवाँ द्वार कहा जाता है यह अभ्यास में दर्जे आते हैं। पहिले आता है सहस्र-दल कँवल। इसके पीछे ज्योतिनिरंजन का आनन्द होगा। उसके अन्दर पीली दीपक की लौ जलती हुई दिखाई देगी। यह तुम्हारी इच्छाओं की पूर्त्ति करने का आधार है। इसके बाद त्रिकुटी का स्थान है, त्रिशूल का स्थान है, ब्रह्मा, विष्णु, शिव का स्थान है। सुमिरन का रस लेते-२ लाल रंग के अन्दर गुरु की मूर्त्ति बन जायेगी। त्रिकुटी के बाद सुन्न का स्थान है। यहाँ पर सब रंग समाप्त हो जाते हैं। सुन्न एक बिन्दु है, जहाँ पर कुछ दिखाई नहीं देता। इसके बाद महा-सुन्न का स्थान है। यदि आप इसमें ध्यान कर रहे हैं, तो आप देखेंगे कि यहाँ पर अँधेरा होता हुआ भी आपको एक ज्योति दिखाई देगी। ऐसा अनुभव आपको होगा, नहीं तो आप इसको पार करके भी सीधे ऊपर जा सकते हैं। इसमें आपको आन्तरिक सत्संग के साथ-२ आनन्द भी मिलता जायेगा। यहाँ पर गुरु और शिष्य दोनों मिल जाते हैं। इसके बाद भँवरगुफा है। लेकिन यह आखिरी सीढ़ी नहीं

है। भँवरगुफा तक सुमिरन करते-२ आओगे। भँवरगुफा सत्तलोक का द्वार है। भँवरगुफा क्या है? भँवरगुफा का मतलब है, जो घूम रही है। इसमें कभी आगे कभी पीछे चक्कर लगाते रहते हैं। यहाँ पर बाँसुरी की धुन होती है। सोहम् बंसी बजती है। यहाँ पर आप उस अवस्था में पहुँच जाते हैं, जहाँ काल और माया सूक्ष्म रूप में हैं। यहाँ पर काल और माया सताने वाली नहीं है। यहाँ सोहम् है। सो का अर्थ है ऊपर चढ़े और हम् का मतलब है एक दम नीचे आ गये। इसलिये इसे भँवरगुफा कहते हैं। यह गुफा है, एक रास्ता है, प्रवेश-द्वार है। यहाँ सोहम् शब्द सुनाई देगा चाहे बीणा में, चाहे बंसी में, चाहे दीपकरूपी हंसों में। उस अवस्था में आपको इशारा मिल रहा है, अर्थात् सत् का निमन्त्रण मिल रहा है। इसके आगे सत्तलोक में सत्पुरुष के पास पहुँचोगे। यह वह स्थान है, जहाँ पर कोई नाशवान् वस्तु नहीं है। ये दर्जे स्वामी जी महाराज ने बताये हैं। इन दर्जों पर पहुँचने के बाद भी अलख, अगम और अनामी के तीन दर्जे और रह जाते हैं।

यह आन्तरिक अनुभव आपको उसी सद्गुरु के मार्ग-दर्शन में होगा, जिसको आप प्रेम कर रहे हैं और जिसने आपको यह रास्ता बताया है। अब सत्तलोक के अन्दर आपको प्रकाश में गुरु का रूप दिखाई दे सकता है। यहाँ पर प्रकाश और शब्द प्रधान है। यहाँ पर जो आपको गुरु का रूप दिखाई देगा, वह आपके अपने संस्कारों के अनुसार है। वह अपने आप में पूर्ण है। यहाँ पर हमारी आत्मा की 'मैं' समाप्त हो जाती है, लेकिन सुरत की 'मैं' रह जाती है। जिसको आप 'मैं' कह रहे हैं वह शरीर, मन, आत्मा का बिन्दु है। इसी तरह से त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न बिन्दु हैं। सोहम् के द्वार से चले, तो परमतत्त्व का अनुभव हुआ।

प्रकाशमय और शब्दमय देश के अन्दर परमतत्त्म का अनुभव हुआ, जहाँ सब चीज़ अविनाशी है। हालाँकि वहाँ पर वीणा की आवाज़ फिर भी सुनी जाती है। वह वीणा की आवाज़ क्या है ? वीणा की आवाज़ है सत्-सत्, सत्-सत्, सत्-सत्। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है "अगर तुम ऊपर जाना चाहते हो, तो एक स्थान पर बैठ-कर, एकाग्र हो करके ॐ तत्सत्-२ का जाप करो।" अब आप सत्तलोक के अन्दर तो पहुँच गये। लोग कहते हैं कि गुरु ने हमें यहाँ तक पहुँचा दिया, बस ! बहुत काफी है। लेकिन स्वामी जी महाराज इसके आगे तीन स्थान और बता रहे हैं, जो सूक्ष्म हैं। वह उसी परमतत्त्वाधार के, उसी अविनाशी मालिक के आत्मिक स्वरूप हैं, आत्मिक पहलू हैं। जैसे इस जगत् के अन्दर परमतत्त्व के तीन पहलू शरीर, मन और आत्मा हैं अर्थात् (1) ब्रह्मा विराट्, (2) विष्णु अव्याकृत, (3) शिव कारण। इसके बाद महाकारण में सोहम् आता है। इसके आगे सत्तलोक में शब्द और प्रकाश का बहुत आनन्द है। अगर आप यहीं ठहर गये तब भी ठीक है। लेकिन इसके आगे सत्पुरुष का आत्मिक दृष्टि से आत्मिक स्थूल रूप है। जगत् में उसका भौतिक शारीरिक स्थूल है विराट्,भौतिक मानसिक सूक्ष्म है विष्णु,उसका भौतिक कारण है शिव। लेकिन वह इनसे न्यारा है। उसी तरह से उसका जो आत्मिक स्थूल है, वह है सत्तलोक। इसके बाद तीन दर्जे हैं—अलख, अगम और अनामी। अलख क्या है ? अलख मालिक का आत्मिक सूक्ष्म रूप है। अलख के अन्दर शब्द ज़्यादा और प्रकाश कम है। अगम के अन्दर केवल शब्द है और प्रकाश नहीं है। 'अगम शब्द की धार'। अगम के अन्दर केवल शब्द है। 'सुरत समानी शब्द में वाको काल न खाय' अगर अलख आत्मिक सूक्ष्म है तो यह आत्मिक विष्णु है। एक दृष्टि से कह रहा हूँ। अगम आत्मिक शिव

है। इसके बाद है अनामी। सत् का अलख अगम का अनुभव करने वाला, प्रकाश और शब्द का अनुभव करने वाला अविनाशी है। उसको अनामी कह दिया, उसको राधास्वामी कह दिया। इन दर्ज़ों से केवल गुरुकृपा के द्वारा ही गुज़रा जा सकता है। जब साधक अन्तर से प्यार करेगा, तब 'सुरत अनामी शब्द' के अनुभव से गुज़रेगा। जब ऊपर जायेगा तो वहाँ के आनन्द का बयान ही नहीं कर सकता है। जब ऐसी अवस्था में पहुँच जायेगा तो 'खुला भक्ति का स्रोत' भक्ति का स्रोत खुल जायेगा।

'शान्तोऽयम् आत्मा' यह शान्त अवस्था है। परम दयाल जी महाराज कहते थे कि मैं तो शान्त अवस्था को अविनाशी दूल्हा कहता हूँ। यदि शान्ति को प्राप्त करना है, तो पहिले खुद शान्त हो जाओ। देवता की पूजा देवता बनकर करो। शान्ति तीन प्रकार की है। ज़बान बन्द करने से, आँख बन्द करने से और कान बन्द करने से। अब इन तीनों के बन्द लगाने से, बाहर का काम तो ये नहीं करेंगी। जब आप अजपाजाप करोगे, तो ज़बान रस लेगी और उसीमें ही विलीन हो जायेगी। नाम लेती-२ वह मन के अन्दर समा जायेगी। आनन्द की अवस्था को प्राप्त हो जायेगी।

राम कहने का मज़ा, जिसकी ज़ुबाँ पर आ गया।
मुक्त जीवन हो गया, चारों पदारथ पा गया॥

आँख का काम है देखना। ध्यान लगाने से आँख अन्दर के अनेक दृश्य देखती है। प्रकाश देखती है और प्रकाश में अपने गुरु को देखती है। आगे जाकर उसका देखना भी बन्द हो जाता है। अब कान बन्द होने से, कान की बाहर की क्रिया समाप्त हो गई, लेकिन मन के द्वारा कान सुन रहे हैं। शब्द चार प्रकार के होते हैं। 1) वैखरी,

2) मध्यमा, 3) पश्यन्ती, 4) परा। बैखबरी कहते हैं बाहर के शब्द को। बाहर का शब्द शरीर के कान द्वारा सुना जाता है। अन्तर में घण्टे और शंख की ध्वनि सुनी जाती है। मध्यमा शब्द मन के कान द्वारा सुना जाता है और वह शब्द आन्तरिक होता है। उस अवस्था में सुरत बाहर के शब्द को नहीं सुन रही होती है।

इसके आगे ॐ बम-२, ॐ बम-२ ध्वनि है। यह सब मानसिक है। भँवरगुफा तक मध्यमा चलता है। अब सत्तलोक के अन्दर जो सत्-२ शब्द सुनाई देता है, उसके साथ प्रकाश भी दिखाई देता है। इसलिये इसको पश्यन्ती भी कहा गया है। अब बारी है सुरत की। आत्मा तो सुन रही है, मगर मन का सुनना बन्द हो जाता है। अब आगे जाकर सुरत जो अगम के अन्दर शब्द सुनती है, उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। लेकिन इसके बाद सुरत का शब्द अशब्द रह जाता है, तब जा करके कान भी समाप्त हो जाते हैं और आप परमतत्त्व से मिल जाते हैं। यह है आन्तरिक सत्संग। गुरु से प्यार करने का यह आन्तरिक तरीका है। आपको इन अनुभवों के बाद भी सत्संग की ज़रूरत है, जिससे जो देखा, सुना और अनुभव किया, वह याद रहे। आठों याम उसका अनुभव होता रहे।

त्याग स्थूल सूक्ष्म गति निरखे, फिर कारन की बारी।
कारन तज महाकारन धावे, तब समझो अधिकारी॥

जब सोहम् का अनुभव हो जायेगा, तब तुम अधिकारी बन जाओगे।

धरम करम व्यवहार न छोड़े, ढूँढ़े सार न इनमें।
सुरत शब्द में सार छिपा है, करे प्राप्त सो तिन में॥

धरम करम व्यवहार न छोड़े। यह रास्ता त्याग का नहीं है, ग्रहण का है। हमें इस जगत् में उसको प्राप्त करना

है। सब उसीको ढूँढ़ रहे हैं। हालाँकि वह सबके अन्दर मौजूद है। व्यवहार—घर के अन्दर पति-पत्नी का व्यवहार, माँ-बेटों का व्यवहार—इन व्यवहारों को छोड़ना नहीं है। ये तो रिश्ते हैं, लेकिन इन रिश्तों में सार नहीं है। यदि आप इन सब रिश्तों को मालिक का मान लो, तो तब तुम्हारा प्यार राग नहीं होगा, अनुराग होगा। इस प्रेम के अन्दर फँसाव नहीं होगा, बल्कि आत्मा का बहाव हो जायेगा। आत्मा, आत्मा से प्यार करती है, तुम समझते हो कि शरीर से प्यार है। 'धर्म कर्म व्यवहार न छोड़े' धर्म क्या है? धर्म है कर्त्तव्य! अपना कर्त्तव्य धर्म समझकर करो। धर्म के अन्दर मातृ-पितृ ऋण, देव ऋण, गुरु ऋण। जहाँ तुम्हारा अधिकार है, वहाँ तुम्हारे साथ कर्त्तव्य भी हैं। आजकल लोग कर्त्तव्य तो करते नहीं हैं, अधिकार माँगते हैं। जो माता-पिता को ऋण देना है, गुरु को देना है, वह दो। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन न करो। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने का मतलब है कृतघ्न होना। कृतघ्न व्यक्ति कहीं का नहीं रहता। लेकिन यह तो एक बाहरी व्यवहार है। यदि तुम इसी व्यवहार में रहोगे, तो अच्छे काम करते रहोगे। धर्मशालाएँ बनवाओ, दान करो आदि। इन सब बातों से आपको अच्छा जन्म मिल जायेगा लेकिन सार तो नहीं मिलेगा। सार किसमें है? 'सुरत शब्द में सार छुपा है' मालिक के प्यार में सार है। सुरत शिष्य है, शब्द गुरु है। सुरत राधा है, शब्द स्वामी है।

राधा आदि सुरत का नाम, स्वामी आदि शब्द पहचान।

आदि शब्द निज शब्द है। जब तक राधा और स्वामी अलग हैं, तब तक विश्राम नहीं मिलता।

स्वामी बैठक अद्भुती, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥

स्वामी की शान बहुत सुन्दर है, अद्भुत है। हैरान कर देने वाली है। हैरान ऐसी, जिसकी तरफ हमें आकर्षण भी है, और डर भी है।

भय बिन प्रीत न होत गुसाईं।

सद्गुरु से प्यार ऐसा होता है कि मन करता है कि नज़दीक जाकर कुछ कहें, लेकिन जब गुरु के नज़दीक जाते हैं तो सारे सवाल भूल जाते हैं। अब आप सोचो कि हैरानी की बात है या नहीं! आप प्रश्न लेकर आते हैं मगर उसके आत्मिक सौन्दर्य, उसकी आत्मिक वाणी को सुनकर, उसके चेहरे को देखकर सब भूल जाते हैं। सत्संग देते समय यदि सद्गुरु मालिक की धार से बँधा हुआ है तो उसका चेहरा भी अलग हो जाता है।

स्वामी बैठक अद्भुती, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥

अरे तुम राधा बनकर मालिक से मिलने जा रहे हो। राधा के अतिरिक्त और कोई अनुभव नहीं कर सकता। ये शब्द स्वामी जी महाराज के हैं, जिनके अन्दर सारी परा-भक्ति का निचोड़ है। राधा स्वामी से कभी अलग नहीं होती। उसी प्रकार शब्द सुरत से अलग नहीं होता। शब्द जब गुप्त होता है, तो उस समय वह अनाम होता है। उस वक्त कोई भेदभाव नहीं होता।

शब्द गुप्त तो रहा अनाम।
शब्द प्रगट तो धरिया नाम॥

परम दयाल जी महाराज कहते थे, "मैं अनामीधाम से आया हूँ। जहाँ शब्द गुप्त है।" शब्द जब प्रकट हुआ, तो जगत् बना। मालिक ने अपने आपको दो में बाँट लिया। शब्द सुरत में अर्थात् गुरु और शिष्य में। जब अलग हुआ तो शोभा हुई, तब प्रकटीकरण हुआ, अद्भुत हुआ क्योंकि

यह भी तो उसीका नमूना है, जिसका लोग भेद नहीं पाते।

गये दोनों जहान नज़र से गुज़र,
तेरी शान का कोई बशर न मिला।
देखी हर जगह तेरी निराली फबन,
तेरा भेद किसी को मगर न मिला।

हर जगह ढूँढ़ा लेकिन उस जैसी शान का बशर नहीं मिला।

'देखी हर जगह तेरी निराली फबन'

इस जगत् में कहीं जागरण हो रहा है, कहीं कीर्तन हो रहा है, कहीं कथा हो रही है, कहीं रामायण का पाठ हो रहा है। यह सब उस मालिक की निराली फबन है। यदि उसको समझो तो बहुत सुन्दर है। आद्या शक्ति है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव उसीसे निकले हैं। उस देवी की पूजा कैसे होती है, उस देवी को नमस्कार कैसे किया जाता है?

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यैः नमस्तस्यै नमो नमः॥

हरएक व्यक्ति के अन्दर शक्ति के रूप में, कुण्डलिनी के रूप में मौजूद है उस देवी को नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु कलारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

जो देवी सोन्दर्य के रूप में, लक्ष्मी के रूप में, कला के रूप में और इस जगत् में राधा के रूप में मौजूद है उसके आगे सिर झुकाओ। उस देवी को नमस्कार है यदि तुम उस देवी के अन्दर भौतिक सुन्दरता देखोगे, फिर तुम्हारा काम नहीं बनेगा। इसलिये हर स्त्री को मातृशक्ति मानकर चलो। उसके आगे झुको। अपना अहंकार हटाओ। उसको नमस्कार करो।

तेरे रहने का कोई मकान भी है,
तेरे मिलने का कोई निशान भी है।
तुझे देखा इधर तो इधर न मिला,
तुझे ढूँढ़ा उधर तो उधर न मिला।

परम दयाल जी महाराज ने निशान के रूप में इस मानवता मन्दिर को रखा है। वह तो परमतत्त्व हैं—सब जगह मौजूद हैं। निशान तो है, मगर लोगों को मिलता नहीं। सद्गुरु के मिलने पर आगे क्या कहा—

कहीं दस्ते सवाल दराज़ नहीं,
किसी और पे यूँ मुझे नाज़ नहीं।
कोई तुझसा गरीब नवाज़ नहीं,
तेरे दर के सिवा कोई दर न मिला।

मैं पूर्ण कब हुआ, जब मुझे महाराज जी मिले। यह बात मैं अहंकार से नहीं कह रहा। असल में दुनिया से लाग-लपेट मुझे शुरू से ही नहीं था। मैं बड़ी मस्ती में था। जबकि मैंने हर प्रकार के आनन्द भोगे, हर प्रकार का गृहस्थ का जीवन व्यतीत किया। लेकिन अन्तस् से मैं मालिक से मिला रहता था। जब मैं परम दयाल जी महाराज से मिला, तो उनके दर्शन करके, उनकी वाणी सुनकर मुझे अन्तस् से ऐसा महसूस हुआ कि यह वही मालिक हैं, जिनको मैं ढूँढ़ रहा था। यही खुदा का रूप है। अब हालत क्या होती है? कहीं दस्ते सवाल दराज नहीं असली सवाल का जवाब कहीं नहीं मिलता। किसी और पे यूँ मुझे नाज़ नहीं। सद्गुरु से तुरन्त ही प्यार हो जाता है। दुनिया में पहिले प्यार होता फिर तलाक हो जाता है। लेकिन गुरु से तलाक नहीं होगा। जहाँ पर गुरु का प्यार होगा, वहाँ तलाक का सवाल ही नहीं उठता। अरे सद्गुरु की अदालत से ऊँची तो कोई अदालत नहीं। जहाँ जाकर तुम तलाक की

अर्ज़ी दोगे।

कहीं दस्ते सवाल दराज़ नहीं,
किसी और पे यूँ मुझे नाज़ नहीं।
कोई तुझसा गरीब नवाज़ नहीं,
तेरे दर के सिवा कोई दर न मिला।

जब सद्गुरु मिल जाता है, तो उसके दर के अलावा और कोई दर नहीं है। इस जगत् में सद्गुरु जैसी दर कहीं और नहीं है।

संजम नियम जप तप करमा, नहीं किंचित् कठिनाई।
सहज योग की सहज रीति है, सहज ही सहजो भलाई॥

संयम है नियन्त्रण करना। क्योंकि अगर आप इच्छाओं की, ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति करते जाओगे, तो इसका कहीं अन्त नहीं है। नियम—नियम का पालन करना भी अनुशासन है। जप-तप—जप से सिद्धि होती है। उस लामा के शिष्य ने बैल का जप किया था तो वह बैल बन गया, वह बाहर नहीं निकल सका क्योंकि उसने समझा कि सिर पर सींग हैं। इसमें भी कठिनाई है इसका मतलब यह नहीं कि संयम बिलकुल मत करो। संयम में रहना भी ठीक है, लेकिन ऐसा संयम नहीं जैसे जैनी साधु नहाते ही नहीं हैं। दीक्षा के समय एक-२ करके उनके सिर के बाल उखाड़ दिये जाते हैं। ऐसे संयम और नियम की ज़रूरत नहीं है। जो कठिन तपस्या करता है, अपने शरीर को सुखाता है, वह अपने अन्दर बैठे हुए ईश्वर को दुःख दे रहा है। अब है तप, धूप में तपस्या करना, धूप में बैठे रहना—इसमें भी कठिनाई है। ऐसी कठिनाई सन्तमत में नहीं है। सहजयोग आसानी से, बिना किसी प्रयास के मनुष्य मालिक को प्राप्त कर सकता है। यह भक्तियोग है और भक्ति के अन्दर कभी कठिनाई हो नहीं सकती। प्रेम करने में कठिनाई नहीं है,

नफ़रत करने में कठिनाई है। आप जिससे नफ़रत करते हो उसकी हर चीज़ आपको बुरी दिखाई देगी। तुम्हारा मन बुरा हो जायेगा। जब प्रेम की दृष्टि से देखोगे, किसीके दोष नहीं देखोगे तो तुम्हारे मन में दूसरों के दोष नहीं आयेंगे। नफ़रत के कारण ही दूसरों के अन्दर दोष दिखाई देते हैं। नफ़रत रुकावट है, दोष देखना रुकावट है। यह रुकावट सहजयोग में नहीं होनी चाहिए। यहाँ प्रेम ही प्रेम है। प्रेम ही रास्ता है, प्रेम ही मंज़िल है, प्रेम ही वह अवस्था है, जहाँ पर पहुँच कर आपको कुछ भी करने-धरने की ज़रूरत नहीं पड़ती। आप सहज में ही बिना किसी प्रयास के मालिक से मिल जायेंगे। आपको दुनिया के कामों को, झंझटों को छोड़ने की ज़रूरत नहीं, लेकिन उनसे बचने का भी तरीका है। अगर आपका गुरु से प्यार है, तो उस प्यार के अन्दर खो जाओ। इस खोने से दुनिया की खुराफ़ातें तुम्हारे मस्तिष्क में नहीं आ सकतीं। प्रेम पवित्र और पावन है। प्रेम के अन्दर काम की भावना आ नहीं सकती। यदि काम आया तो क्रोध भी आयेगा।

'जहाँ बाज बासा करे पंछी करे न बास।'

सतगुरु सतनाम सतसंगत, समझ सहज में धारे।
फिर अन्तर में करे चढ़ाई, जड़ चेतन निरवारे॥

मैंने पहिले ही आपको सद्गुरु, सतनाम और सत्संग के बारे में बता दिया। सद्गुरु से पहिले प्रेम करोगे। जब उसके नज़दीक आओगे तो वह आपको सतनाम देगा, सत्संग देगा। आप उसी नाम को जपते-२ उस अवस्था में पहुँच जाओगे, जहाँ सांसारिक जड़ता समाप्त हो जाती है और शुद्ध चेतना रह जाती है आदमी चिद्घन हो जाता है। उस समय जड़-चेतन की ग्रन्थि-गाँठ समाप्त हो जाती है। लेकिन इसके बाद भी सत्संग की ज़रूरत है, गुरु के पास बैठने की

ज़रूरत है। पहिले गुरु से समझिये, फिर ध्यान में बैठिये। यह नहीं कि तीन बन्ध लगाकर अपने आप ही शुरू कर दें। राधास्वामी मत ने कैसा अच्छा व्यापार चलाया—

राधास्वामी ने भेद बताया, सुरत शब्द मत गाया।
सुरत शब्द मत सबका टीका, सुरत ने शब्द को पाया॥

सुरत शब्द मत गाया। मैं आपको बता रहा हूँ कि गाना क्या होता है?

राधास्वामी गायकर, जनम सुफल कर ले।
यही नाम निजनाम है, चित अपने धर ले॥

जब शब्द गुप्त था, तो अनाम था। जब शब्द प्रकट हुआ तो 'धरिया नाम'। यह सुन्दर जगत् बना।

शब्द गुप्त जहाँ धारिया राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई जहाँ कोई विश्राम॥

मालिक से अलग होने में खिचाव हुआ। धारा बनकर इस जगत् में आई, अब राधा बनकरके मालिक के पास जाना है। अब खिचाव है तो खिचाव की पूर्त्ति कैसे हो? तपनकरारी की तृप्ति कैसे हो? जब प्रेम से प्यार से प्रेरित होकर उसकी तरफ जाओगे।

बिना मेहर नहीं पावई जहाँ कोई विश्राम।

जब तक मालिक आपको मिलेगा नहीं, शान्ति नहीं होगी, आनन्द भले ही आपको आ जाये। अब वह शान्ति कैसे मिलेगी?

बिना लेहर नहीं पावई जहाँ कोई विश्राम।

जब तक प्यार नहीं करोगे तब तक मेहर नहीं मिलेगी। प्रेम करने पर वह राधास्वामी प्रकट हो जायेंगे, जो गुप्त थे और आप उनसे मिलकर एक हो जायेंगे, आपको शान्ति मिल जायेगी। इसको कहते हैं—गाना। उस हालत में

रहना गाना है। भगवद्गीता को गीता क्यों कहा गया? भगवान् कृष्ण उस अवस्था में रहते थे। जगत् में रहते हुए भी उन्हें जगत् से लगाव नहीं था।

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥

गीता ही सन्तमत की सबसे उत्तम व सबसे श्रेष्ठ पुस्तक है। गीता सुगीता कर्त्तव्या। गीता को अच्छी तरह से गाओ। किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। जैसे धर्म आदि में स्वाद नहीं मिलेगा, उसी प्रकार दूसरे शास्त्रों के विस्तार से कोई फायदा नहीं होगा।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता।

वह गीता जो पद्मनाभ, परमतत्त्व के अवतार भगवान् कृष्ण के मुख की वाणी है, उसीको अपनाओ। गीता का मतलब है उसको अपनाना।

'राधास्वामी गायकर' राधास्वामी की हालत अपने अन्दर लाकर, उसको भूले नहीं।

कर गुरु की संगत रात दिन, नर जनम अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से, यम का शीश न भार ले॥

कितनी आसान बात है, दुनिया के सभी झंझटों को फेंक दो। 'कर गुरु संगत रात दिन' अब संगत का मतलब यह नहीं कि हर वक्त उसके पास बैठे रहो। अरे भई गुरु को सोने का तो समय मिलना चाहिए। गुरु की संगत का मतलब है—गुरु के अन्दर रहना। गुरु की आज्ञा के मुताबिक चलना। 'नर जनम अपना सुधार ले'। सुधार क्या है? सु+धार अर्थात् अच्छी धार, अर्थात् राधा बन जाना। आम धार तो जगत् में फँसने वाली है लेकिन अच्छी धार राधा बनती है। राधा बनकर अपना जन्म सुधार ले।

'दे फेंक माया बोझ सिर से' जितना बोझ है सब खत्म

कर दो। गारण्टी है आपको। 'यम का शीश न भार ले'। यम का भार अर्थात् मन का भार फेंक दो। तो यह राधास्वामी गाने का मतलब।

राधास्वामी गायकर, जनम सुफल कर ले।
यही नाम निज नाम है, चित अपने धर ले॥

वह हमारे हितचित के अन्दर रत है। इसको हमेशा के लिए गाना है—उस अवस्था में रहना है। भगवान् कृष्ण ने इसको ब्राह्मी स्थिति कह दिया। हमने उसे राधास्वामी अवस्था कह दिया।

राधास्वामी ने भेद बताया, सुरत शब्द मत गाया। सुरत शब्द अपने में लागू कर लिया।

सुरत शब्द मत सबका टीका, सुरत में शब्द को पाया।

सुरत-शब्द योग या मार्ग जो है, वह सबसे ऊँचा इसलिये है कि सुरत ने मालिक को पा लिया अर्थात् शिष्य के अन्दर गुरु प्रकट हो गया। सुरत के अन्दर शब्द प्रकट हो गया। जब ऐसी अवस्था आ गई, तो आपको कहीं आने-जाने की, कुछ करने की ज़रूरत नहीं है।

उसकी हो जुस्तजू क्या, जो अपने रूबरू है।

सामने बैठा है, लेकिन देखा नहीं जाता।

यह जुस्तजू नहीं है, तौहीने जुस्तजू है।

उसकी क्या तलाश की जाये जो साक्षात् सामने बैठा है और जिसको दरस-परस करके देखा जा सकता है। अब उसकी तलाश करना, कहीं और जाना उसकी हतक करना अर्थात् बेइज़्ज़ती करना है।

अन्धे बने हैं आबिद, आँखें नहीं हैं खुलतीं।
क्या ढूँढ़ते हैं उसको, जो अपने दूबदू है॥
दायें है अपने बायें, इसजा है और उसजा।
आँखें खुलीं तो देखा, वह अपने चारसू है॥

क्या खोलो खाल में है, क्या फरजी हाल में है।
जो है जुबाँ पै बैठा, क्या उसकी गुफ्तगू है॥
दिलदार और दिलवर, दिलकश है दिलरुबा है।
खुरशीद रू अगर है, वह मेरा महरू है॥
वह दिल में खुद है कायम, दिल घर है जिसका दायम।
दिल को संभल के देखा, वह दिल में मूबमू है॥
राधास्वामी की मेहर से, कर शुगल जिक्र सुल्ताँ।
पहुँचेगा अपने मस्किन, जहाँ तेरी जुस्तजू है॥

जब अनुभव हो जाता है, तब इस शब्द की समझ आ जाती है। वह दिल में खुद है कायम। वह जिसके दिल में मौजूद है। दिल घर है जिसका दायम। दायम का अर्थ है हमेशा रहने वाला। यह घर जो आप ईंट-पत्थरों का बनाते हैं, हमेशा रहने वाला नहीं है। उसका घर शिवसंकल्प से बनेगा।

दिल को सम्भल के देखा, वह दिल में मूबमू है।

जब उसके प्रेम से मन ओत-प्रोत हो गया, तब देखा कि वह तो वैसा का वैसा ही मौजूद है। वह पहिले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा।

राधास्वामी की मेहर से कर शुगल जिक्र सुल्ताँ।

जिक्र सुल्ताँ कहते हैं सुरत-शब्द योग को।

'राधास्वामी मेहर से' अकेला नहीं सद्गुरु की कृपा से। जब उससे प्रेम करोगे, तब उसकी मेहर होगी, दया होगी।

पहुँचेगा अपने मस्किन, जहाँ तेरी जुस्तजू है।

तब तू अपनी मंज़िल पर पहुँचेगा। यह सहज योग है, सहज समाधि है, सहज रास्ता है। लेकिन हर समय उस

प्रेम के रास्ते से चलकर उसकी मेहर को प्राप्त करते चलो। 'बिना मेहर नहीं पावई जहाँ कोई विश्राम' यह पराभक्ति का मार्ग है, ऊँची से ऊँची भक्ति का मार्ग है। राधास्वामी मत सब मतों का 'टीका' होने के नाते किसीका खण्डन नहीं करता। जो खण्डन करता है, उसे राधास्वामी का अनुभव नहीं है। इन शब्दों के साथ मैं आज का सत्संग यहीं समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको मार्च तक के दौरे की सूचना दी थी। वैसाखी के निकट होने के कारण ज़्यादातर समय इस उत्सव की तैयारी में और वैसाखी सन्देश के लिखने में व्यतीत हुआ। मार्च महीने का मासिक सत्संग रामनवमी के निकट होने के कारण बहुत व्यापक और प्रभावशाली रहा। बैसाखी के लिए लोग पहिली अप्रैल से ही आना शुरू हो गये थे। 5 अप्रैल को हम हिमाचल के एक संक्षिप्त दौरे पर गये। इसका मुख्य कारण यह था कि हमीरपुर से आगे और बिलासपुर के निकट एक मैरन नामक गाँव में मास्टर रूपलाल के सुपुत्र के उपनयन संस्कार पर जाना था। 5 अप्रैल को हम सायंकाल 4 बजे के करीब हमीरपुर पहुँच गये क्योंकि वहाँ हमें रात्रि का विश्राम करना था। उसी दिन 7 बजे श्री गोयल C.J.M. के घर पर सत्संग हुआ और हम रात को श्री जानेश्वर गोयल सैशन जज के घर पर ठहरे। दूसरे दिन प्रातःकाल श्री जानेश्वर गोयल के घर पर 8 बजे से 10 बजे तक सत्संग हुआ। हम करीब

11 बजे रूपलाल की प्रतीक्षा करने के बाद अपनी मारुति वैन में मैरन के लिए रवाना हो गये। हालाँकि, रूपलाल और उनके भाई 11 बजे ही हमीरपुर पहुँच चुके थे तथापि वे किसी और काम में व्यस्त होने के कारण श्री जानेश्वर गोयल के घर पर हमारे रवाना होने के आधा घण्टा बाद पहुँचे।

मैरन की घटनाओं की सूचना देने से पहिले मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि हमीरपुर से पहिले हम रास्ते में श्री नारायण दास डोगरा के गाँव सरड डोगरी में ठहरे, जहाँ पर छः सौ से भी अधिक श्रद्धालु और प्रेममय सत्संगी इकट्ठे हो गये थे। यहाँ पर सत्संग एक विशेष कारण से आयोजित किया गया था, जो मैं यहाँ बताना चाहता हूँ। हिमाचल के दौरे पर जाने से करीब तीन महीने पहिले मुझे एक बहुत ही अच्छा स्वप्न आया, जिसकी सच्चाई की तस्दीक सरड डोगरी पहुँचने पर हुई। मुझे महाराज जी का स्वप्न नहीं आता, क्योंकि मैं उनकी उपस्थिति 24 घण्टे महसूस करता हूँ। किन्तु यह स्वप्न बहुत ही विचित्र और आनन्दमय था। मुझे उस स्वप्न में दिखाई दिया कि परम दयाल जी महाराज सफेद पाजामा और कुर्त्ते में स्लेटी रंग की वास्कट पहने प्रकट हुए। जहाँ वह प्रकट हुए, उसके पीछे पहाड़ थे। मैंने पूछा, "महाराज! आप कहाँ थे?" उन्होंने उत्तर दिया, "शर्मा! मैं कहीं नहीं गया था। इन्हीं पहाड़ों में ही मेरा स्थान है। मैं तो यहीं बैठा था।" मुझे ऐसा लगा कि महाराज जी एक ऊँचे मन्दिर जैसे स्थान से सीढ़ियों से उतर कर मेरे पास आये थे। उनका चेहरा पुरनूर था और बहुत प्रसन्न मुद्रा में था। मैंने कहा, "पिता जी! बहुत ही अच्छा हुआ कि आप आ गये, अब आप ही सत्संग दें।" उन्होंने उत्तर दिया, "सत्संग तो तू ही देगा।

यह स्थान तो मेरा घर है।" इस दृश्य में श्री नारायण दास डोगरा और परदेसी भी मौजूद थे। इस वार्त्तालाप में मुझे स्वप्नावस्था में अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ और प्रेम के आँसू बहने लगे। उन्होंने दुबारा कहा, "यह मेरा अपना ही घर है। मैं और कहीं नहीं गया।" इस स्वप्न के बाद जब मैं नींद से उठा, मेरा तकिया अश्रुओं से भीगा हुआ था। इस स्वप्न का मतलब यह है कि परम दयाल जी महाराज जो इस समय स्थूल दृष्टि से और सूक्ष्म दृष्टि से सब जगह व्यापक हैं, शख्सियत से परे हैं। उनके सुन्दर रूप का स्वप्न में प्रकट होना मेरे प्रेम और मेरी भावनाओं का प्रकट होना था। एक दृष्टि से उनका सूक्ष्म रूप भी कुछ अवतारों के रूप के समान स्थायी है और उस रूप से अगाध प्रेम रखने वाले सत्संगी उस रूप से सांसारिक मामलों में लाभ भी उठा सकते हैं, किन्तु इस रूप से उन्हें जीवन्मुक्ति की अवस्था नहीं मिल सकती। जैसा कि मैंने पहिले कहा है कि मेरे परमइष्ट होने के नाते और कई जन्मों के संस्कारों के कारण परम दयाल जी से आत्मिक सम्बन्ध होने के कारण उनके जीते-जी और उनके चोला छोड़ने के बाद भी मेरी चेतना में, समाधि में और सहज अवस्था में वह मुझसे और मैं उनसे ओत-प्रोत हूँ। इसलिये ही तो मैं अपने आपको फकीरमय लिखता हूँ।

हाँ यह तो मानना पड़ेगा कि जहाँ-२ परम दयाल जी महाराज अपने जीवनकाल में सत्संग के लिए या किसी परमप्रिय सत्संगी को आशीर्वाद देने के लिए जाते थे, वहाँ उनकी किरणें और विचारधाराएँ हमेशा के लिए फैल जाती थीं। उनकी इस अनन्त आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव मानवता मन्दिर में सजीव रूप से मौजूद है। इसके अलावा मैं शुरू-२ में और अब भी किसी ऐसे सत्संगी के घर पर

पहिली बार गया, जहाँ पर परम दयाल जी अक्सर जाया करते थे, तो उनकी किरणों की शक्ति का प्रमाण मिलता रहा। ऐसे अवसर पर जब मैं विशेष सत्संगी के घर पर दो सोफों में से किसी एक पर बैठता, तो वह यही कहता कि परम दयाल जी महाराज इसी सोफे पर बैठते थे।

ये साधारण सी बातें हैं किन्तु इनका सम्बन्ध गुरु-शिष्य के बीच में सच्चाई का प्रमाण है, जो अगाध प्रेम के कारण जीवनकाल में ही एक हो जाते हैं। यहाँ पर मैं आपको एक और उदाहरण देना चाहूंगा। 11 अगस्त 1983 में मेरे बड़े लड़के अरुण का शुभ विवाह देहली में होना निश्चित हुआ। हमने उसकी बारात को भाग्य माता जी की बहिन शोभा सलूजा के न्यू राजेन्द्र नगर के घर से चलाने का निश्चय किया। हमने इसी प्रोग्राम के निमन्त्रण-पत्र भी छपवा दिये, किन्तु दो-तीन दिन के बाद हमने निश्चय किया कि बारात उस हिन्दु महासभा भवन से आरम्भ होनी चाहिए, जहाँ परम दयाल जी महाराज 20 वर्ष पहिले सत्संग दिया करते थे और जहाँ पर मेरी उनसे पहिली भेंट हुई थी। जब हम हिन्दु महासभा भवन के प्रबन्धक से मिले तो उसने हमें हाल तो दे दिया लेकिन बारातियों के अलग ठहरने के लिए कमरे नहीं दिये। हम तुरन्त बिरला मन्दिर गये। बिरला मन्दिर की धर्मशाला बहुत ही सुन्दर और होटल की तरह है। हमें वहाँ पर 5-6 अच्छे कमरे मिल गये। उधर लड़की वालों को हमने यह कहा था कि वह कोई आडम्बर नहीं करें, केवल बारात का अच्छा स्वागत करें। हमारी बहू के पिता श्री मोहन लाल बहल जो भारत सरकार से सहायक सेक्रेटरी के पद से रिटायर हुए थे, बारात के स्वागत के लिए अच्छा स्थान ढूंढ़ते-२ बसन्त बिहार जा निकले। वहाँ पर उनकी भेंट स्वर्गीय श्री एस. सी.

गुप्ता के सुपुत्र और उनकी पत्नी से हुई। श्री गुप्ता जी के सुपुत्र ने उनसे कहा, "मैं आपकी सहायता करूंगा और बसन्त विहार में ही बारात के स्वागत के लिए बहुत अच्छा भवन दिलवा दूंगा। लेकिन आप यह बताइये कि आपकी सुपुत्री का विवाह किसके साथ हो रहा है।" शायद गुप्ता जी उनको रिटायर सहायक सेक्रेटरी होने के नाते जानते थे। किन्तु जब उनको यह पता चला कि मोहन लाल जी बहल की सुपुत्री का विवाह मानव दयाल जी महाराज के बड़े सुपुत्र से हो रहा है, तो वह गद्‌गद हो गये। उन्होंने कहा, "तब तो हम आपकी ओर से सारा प्रबन्ध करेंगे। मञ्जु हमारी ही लड़की है।"

बारात से एक दिन पहिले बरामदे वाले दो कमरों में सफाई हो रही थी। मैं बरामदे में बैठा था। सत्संगी दूर-२ से आ रहे थे और कार्यसेवा पूछ रहे थे। उसी समय परम दयाल जी के सुपुत्र शाह पद्‌म जंग और उनकी पत्नी सरला जंग वहाँ पर पहुँचे। सरला ने राधास्वामी कहने के बाद एक दम चिल्ला कर कहा, "महाराज मेरे विवाह के अवसर पर परम दयाल जी महाराज ने इनकी (शाह पद्‌म जंग की ओर इशारा करते हुए) बारात बिरला मन्दिर से चलाई थी और वह इसी कमरे में रहे थे।" मुझे यह सुनकर रोमांच का अनुभव हुआ। जब यह पता चला कि शाह पद्‌म जंग के विवाह पर सरला जी की ओर से एच. एस. गुप्ता और उनके परिवार ने अपने घर पर बारात के स्वागत का प्रबन्ध किया था, तो मुझे और भी आनन्द का अनुभव हुआ। 25 वर्ष के बाद एक ही प्रकार की घटना का घटित होना कोई आकस्मिक बात नहीं है। प्रकृति के विधान में हमेशा नियम काम करता है। विचारों का आकाश में निवास रहता है और एक सच्चे व्यक्ति के विचार हमेशा के लिए प्रभाव-

शाली रहते हैं। जब मैंने अप्रैल के हिमाचल के छोटे से दौरे के सम्बन्ध में श्री नारायण दास से बात की और उसे अपने स्वप्न की भी बात सुनाई, तो उन्होंने कहा, महाराज ! "मैं चाहता हूँ कि आप मेरे गाँव सरड डोगरी पधारें, जहाँ पर परम दयाल जी महाराज कई वर्ष पहिले गये थे और उन्होंने कहा था, नारायण दास ! यह मेरा अपना घर है। मैं यहाँ से जल्दी वापिस नहीं जाऊंगा।" नारायण दास ने बात जारी करते हुए कहा, "परम दयाल जी की इस इच्छा को याद करते हुए मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने गाँव में उनकी स्मृति में मानवता का केन्द्र बनाऊँ और आप वहाँ चलकर मेरे गाँव में सत्संग दें और मानवता का झण्डा गाड़ें। परम दयाल जी ने भी वहाँ मानवता का झण्डा गाड़ा था और कहा था कि भविष्य में वह सरड डोगरी में मानवता का लोहे का झण्डा गाड़ेंगे। महाराज ! वह भविष्य मुझे अभी दिखाई दे रहा है और आप मुझे इस दौरे के दौरान में मेरी इच्छा और परम दयाल जी की भविष्यवाणी को सच्चा रूप दें।"

इसलिये हमीरपुर पहुँचने से पहिले हम प्रातःकाल 9 बजे श्री नारायण दास के साथ मारुति वैन में एक कच्चे रास्ते से सरड डोगरी गाँव के करीब पहुँच गये। उसमें आगे का रास्ता पथरीला था। वहाँ पर करीब 30 लोग हमारे स्वागत के लिए मौजूद थे। उनमें नारायण दास जी के भाई कर्म चन्द भी मौजूद थे। यह लोग बड़े प्रेम से हमें कोई आधा मील दूर तक सरड डोगरी गाँव ले गये।

वहाँ पर सैकड़ों स्थानीय और आस-पास के लोग सत्संग के लिए पहिले से मौजूद थे। उनके चेहरों पर प्रेम और श्रद्धा टपक रही थी। शामियाना लगा हुआ था और दो घरों के बीच मैदान में दरियाँ बिछी हुई थीं। सभी लोग

बड़ी श्रद्धा से आशीर्वाद लेने आये और मुझे फूलों से लाद दिया। जिस स्थान पर मैंने मानवता का झण्डा गाड़ा वहाँ से वही पहाड़ों का दृश्य दिखाई दे रहा था, जो मैंने स्वप्न में देखा था। सत्संग में सभी सत्संगी ध्यान पूर्वक और मस्ती में बैठे रहे मुझे वास्तव में ऐसा लगा जैसे मैं घर में बैठा हुआ हूँ। सत्संग के बाद भण्डारे का बहुत अच्छा प्रबन्ध था और भोजन भी बहुत ही स्वादिष्ट था। इस प्रबन्ध का श्रेय श्री नारायण दास जी की बहिन श्रीमती रामरखी श्री तारा चन्द जी की पत्नी को है, जो चार दिन से इस उत्सव के लिए सरड डोगरी आई हुई थीं और बड़ी लगन से तैयारियां कर रही थीं। यह एक बहुत ही सौभाग्य की बात है कि श्री नरायण दास डोगरा का परिवार तथा उनकी बहिन का परिवार पूरी तरह से शरणागत है। मैं सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूँ कि यह दोनों परिवार और नारायण दास जी के सभी भाइयों के परिवार भक्ति की उच्च कोटि पर पहुँचें। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि नारायण दास जी की माता जो इस समय 95 वर्ष की है एक आदर्श सत्संगिन है और मानवता के असूलों पर चल रही है।

मैंने जैसा आपको पहिले बताया कि हम शनिवार सायंकाल से पहिले श्री रूपलाल शर्मा के घर पर मैरन गाँव में पहुँच गये। श्री रूपलाल और उसके भाई भी हमारे पीछे-२ एक साथ मैरन पहुँचे। यहाँ पर सायंकाल एक सत्संग हुआ जिसमें कि श्री रूपलाल के परिवार वाले, अतिथि और आस-पास से आये हुए सत्संगियों ने भाग लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल से ही रूपलाल जी के सुपुत्र के उपनयन की रस्म शुरू हो गई। मैंने उस बच्चे को आशीर्वाद दिया। उपनयन की रस्म से पहिले सभी स्त्रियों ने

बहुत सुन्दर गीत गाये। सारा वातावरण धार्मिक और प्रेममय हो गया। श्री रूपलाल जी के सुपुत्र की विधिवत् दीक्षा में मैंने ही उसे गुरुमन्त्र दिया और यह उत्सव बड़े उल्लास से सम्पन्न हुआ। सभी को आशीर्वाद देने से पहिले हमने भोजन किया और करीब एक बजे दोपहर वहाँ से रवाना होकर 4 बजे तक श्री जानेश्वर गोयल सैशन जज के घर पर हमीरपुर पहुँच गये। यहाँ पर सायंकाल के सत्संग में हमीरपुर के सत्संगी आये। उससे पहिले दिन जब हम मैरन के लिए रवाना होने वाले थे, हमने प्रातःकाल 11 बजे का भोजन श्री क्रान्ति कुमार शर्मा जो परम दयाल जी महाराज के दामाद हैं, के घर पर खाया। यह एक बड़े हर्ष की बात है कि परम दयाल जी की सुपुत्री श्रीमती सुषुम्ना और क्रान्ति कुमार मेरे साथ वैसा ही प्रेम करते हैं, जैसा वह परम दयाल जी के साथ करते थे। इनका बेटा सिद्धार्थ जो इस समय करीब 6 वर्ष का है, मेरे से बहुत प्यार करता है और आदर करता है। जब भी हम हमीरपुर जाते हैं, तो इस परिवार में हम अवश्य सत्संग दिया करते हैं।

इस प्रकार रविवार रात्रि को हमीरपुर विश्राम करने के पश्चात् हम दूसरे दिन प्रातः वहाँ से रवाना होकर करीब 10 बजे तक होशियारपुर पहुँच गये। हिमाचल का यह संक्षिप्त दौरा बहुत ही रोचक और सफल रहा। मानवता मन्दिर में बीसियों सत्संगी उस दिन से पहिले ही पहुँच चुके थे। दो-तीन दिनों में बाहर के सैकड़ों सत्संगी मानवता मन्दिर में पहुँच गये।

इस बार वैसाखी का सत्संग 8 अप्रैल सायंकाल से ही शुरू हो गया। 9, 10, 11 को भी प्रातः और सायं सत्संग होते रहे। बाहर से आने वालों की संख्या पिछले कई वर्षों के मुकाबले में अधिक हो गई। इसके बावजूद भी

मन्दिर के कार्यकर्त्ताओं ने सबके ठहरने का और खाने का बहुत ही सुचारु प्रबन्ध किया। 12 और 13 अप्रैल को शामियाने में ही सत्संग आयोजित हुए। सत्संगी हज़ारों की संख्या में उपस्थित थे। किन्तु सभी सत्संगों में अनुशासन बना रहा इस बार के सत्संग विशेषकर वैसाखी शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में 'साक्षी' भाव के स्पष्टीकरण में दिये गये। मेरे सत्संग के शुरू होने से पहिले कमालपुर वाली माता ने बावजूद अस्वस्थ होने के बहुत ही सुन्दर, रोचक और शिक्षाप्रद सत्संग दिया। हमें इस बात का गौरव है कि कमालपुर वाली माता जिनकी सच्चाई और अनुभव की परम दयाल जी ने भी प्रशंसा की थी, हर वैसाखी और गुरुपूर्णिमा के अवसर पर योगदान देती हैं। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि यह वरिष्ठ आचार्या दीर्घ आयु और स्वस्थ हों और उनकी छत्रछाया बनी रहे।

आचार्य कैप्टिन लाल चन्द ने हर अवसर की भाँति अपना अनुभव बाँटते हुए सत्संगियों को पूर्ण रूप से गुरुमुख और शरणागत होने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार आचार्य श्री के० पी० वर्मा, श्री शब्दानन्द, श्री कृष्ण मोहन श्रीवास्तव, श्री कृष्ण मोहन तिवारी और श्री सूर्य नारायण भट्ट ने भी प्रेरणादायक सत्संग दिये। मैंने कई उदाहरणों से बताया कि साक्षीभाव का मतलब उस राधास्वामी अवस्था में रहना है, जिसमें साधक प्रकाश और शब्द से भी ऊपर उठकर ज़ाते पाक में एवं विशुद्ध सत्त में ऐसा द्रष्टा होकर रहता है कि सहज में द्वन्द्वात्मक संसार में तैर रहा है। वह बेख्वाहिशी की ख्वाहिश एवं अनिच्छा की इच्छा वाली अवस्था में रहता है। ऐसा लगता है कि बिना किसी इच्छा के उसकी सारी इच्छाएँ सुन्दर रूप से पूरी होती जाती हैं। इस प्रकार वह आप्तकाम हो जाता है अर्थात् वह इच्छाओं

के पीछे नहीं दौड़ता बल्कि उसकी सांसारिक आवश्यकताएँ ऐसे सुन्दर रूप से पूर्ण होती जाती हैं मानो कोई दिव्यशक्ति उसके सारे जीवन को चला रही है। उसका हर साँस राधास्वामी के लिए होता है, उसका खाना-पीना, उठना-बैठना, चलना-फिरना राधास्वामी की सेवा एवं राधास्वामी भाव में रहना मात्र है। यह सहज जीवन ही सहज समाधि और ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। इस अवस्था के पाने के लिए ही सद्गुरु को अपनाना, सत्संग में सद्गुरु की वाणी-रूपी गंगा में नहाना और आन्तरिक अभ्यास करना आवश्यक होता है।

जब सत्संगी उस सद्गुरु के सत्संग में जाता है, जो स्वयं साक्षीभाव में रहने वाला है, तो कुछ समय के पश्चात् सत्संगी पर भी सद्गुरु की अवस्था का प्रभाव पड़ता है। इसलिये वैसाखी का सत्संग विशेष महत्त्व रखता है। इस बार भी मैंने यह अनुभव किया कि खासकर 12, 13 अप्रैल के सत्संगों में मेरे प्यारे हज़ारों सत्संगी एक मस्ती के सागर में डूब गये। इन सत्संगों की विडियो फिल्म ली गई है, जो आपको समय-२ पर दिखाई जायेगी। जैसा मैंने कई बार बताया है कि साक्षी गवाह को कहते हैं जैसे कचहरी के कटहरे में ठहरा हुआ गवाह न्यायाधीश के सामने उन अच्छी या बुरी घटनाओं की सूचना देता है, जिनका उसने उन रूटनाओं से अलग-थलग रहते हुए अनुभव किया था और उनमें आसक्त नहीं था। इसी प्रकार जब सत्संगी अपने इष्ट के प्रेम में शरीर, मन, आत्मा को भूलकर इन तीनों में दुःख-सुख, हर्ष-शोक और आनन्द के अनुभवों को अनासक्त होकर गवाह के रूप में देखता है, वह राधास्वामी अवस्था में पहुँच जाता है।

इस मस्ती का आलम 15 अप्रैल तक रहा और बहुत

से बाहर से आये हुए सत्संगी 16 अप्रैल प्रात: तक मानवता मन्दिर में ठहरे रहे क्योंकि मुझे 23 अप्रैल को देहली से विदेशी दौरे पर रवाना होना था, इसलिये हम 18 अप्रैल को ही होशियारपुर से रवाना होकर देहली पहुँच गये। 20 अप्रैल तक बावजूद इसके कि मैंने कोई औपचारिक सत्संग नहीं रखा था, बहुत से सत्संगी राजपुर रोड और फरीदाबाद में लगातार आते रहे और व्यक्तिगत सत्संग का सिलसिला जारी रहा। जब सत्संगी मेरे पास बिना सूचना दिये हुए प्रेमभाव से ओत-प्रोत होकर आते हैं तो मुझे बुरा नहीं लगता। मैं उनकी भावनाओं को समझता हूँ और उनसे पूरी सहानुभूति रखता हूँ। हरएक सत्संगी अपना अधिकार समझकर इस आशा से मेरे पास आता है कि मैं उसकी समस्या को सुलझा दूँगा और उसके दु:ख को दूर कर दूँगा, तो मेरा यह फर्ज़ हो जाता है कि सद्भावना से और प्रेम से उनका स्वागत करूँ और उनको पूरी तसल्ली दूं। 90% दु:खी जीव मेरे मिलने के बाद और सद्भावना तथा आशीर्वाद के बाद निश्चित रूप से सन्तुष्ट और सुखी हो जाते हैं। इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है मैं केवल सद्भावना देता हूँ और किसीको हताश नहीं होने देता। इस व्यवहार से उनका विश्वास दृढ़ हो जाता है और उनके काम बन जाते हैं।

यह भी सम्भव है कि मेरे पास कर्म के मारे हुए जीव उसी समय आते हैं जब उनके कर्म कटने का समय आ जाता है। परम दयाल जी ने मुझे आदेश दिया था कि मैं किसी भी दु:खी जीव को निराश न लौटाऊँ। बचपन से मेरा स्वभाव ही ऐसा था। इसका परिणाम यह होता था कि पढ़ाते समय भी मेरे छात्र मेरे पढ़ाने से सन्तुष्ट रहते थे और मेरा कोई भी छात्र मेरे विषय में असफल नहीं होता

था। ऐ मेरे प्यारे आत्मांश सत्संगियो ! आप आध्यात्मिकता की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मानवतारूप विश्वविद्यालय के छात्र हैं। इस विश्वविद्यालय में अध्ययन का विषय पराप्रेम और पराभक्ति है। मुझे पूरा विश्वास है कि आप सभी इस प्रेम-परीक्षा में मेरी देखरेख में सफल रहेंगे। आपका लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे। इसी आशा के साथ मैं इस महीने के मासिक सन्देश को यहीं समाप्त करता हूँ।

मैं सच्चे दिल से आपको आशीर्वाद देता हूँ कि आप इस प्रेम-सन्देश को अपने जीवन में चरितार्थ करें। घर में सभी सम्बन्धियों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करें। सद्गुरु के प्रेम में ओत-प्रोत होकर आप दिन-रात राधास्वामी का सुमिरन करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्भावना भेजता हूँ।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

सूचना

अप्रैल 21, 1991 को फकीर सत्संग भवन के अधूरे बने हाल मानवधाम में प्लाट होल्डर्ज़ की दोपहर के दो बजे मीटिंग हुई। उस मीटिंग में महत्त्वपूर्ण बातों का फैसला करना था। परन्तु दुःख की बात है कि मानव मन्दिर पत्रिका में छपवा देने के बाद भी सत्संगियों ने बड़ी लापरवाही दिखाई। मीटिंग में 70 में से केवल 15 सत्संगी ही उपस्थित थे। इसलिये कोई महत्त्वपूर्ण फैसला नहीं लिया जा सका। उपस्थित सत्संगियों ने मीटिंग में निम्नलिखित सुझाव पेश किये :—

(1) प्लाटों के final नम्बर पास करके नक्शे सहित सत्संगियों को अगली मीटिंग में दे दिये जायें।

(2) मानवधाम की International Society of Humanism, सत्संगियों को 99 years का lease देने की ज़गह प्लाटों को freehold कर दे। 200 रु० वार्षिक लीज़ फीस लेने के बजाय सोसाइटी एक ही बार 2000 रु० प्रति सत्संगी से लेकर (जो कि उसने रजिस्ट्रेशन का सरकार को दिया है) उनके नाम रजिस्ट्री करा दे।

(3) हरएक प्लाट लेने वाले सत्संगी से 10000 रुपये development charges (सड़कें, sewer, पानी आदि) के लिए) सोसाइटी को शीघ्र से शीघ्र जमा करा दें ताकि सड़कें बनानी आरम्भ कर दी जायें।

(4) बाकी काम प्लाट लेने वाले सत्संगी स्वयं एक कमेटी बना कर पूरा करवायें। नक्शा बनवाने के बाद सत्संगी भाई-बहिन जनवरी 1992 में construction का काम आरम्भ कर सकते हैं।

(5) मकानों का नक्शा ऐसा होना चाहिए कि जिसमें कम

से कम सभी मकान बाहर से एक जैसे दिखें।

(6) यदि किसी कारण सत्संगी भाई-बहिन प्लाट या बना-बनाया मकान नहीं रखना चाहें तो वह उस समय की कीमत के अनुसार सोसाइटी को ही वापिस कर सकते हैं ताकि जो सत्संगी लिस्ट में हैं सोसाइटी उनको वह प्लाट या मकान दे सके। सोसाइटी केवल पाँच प्रतिशत handling charges लेगी बाकी पैसा सत्संगी को वापिस कर दिया जायेगा।

(7) प्लाटों के नक्शे जल्दी से जल्दी बनवा लिये जायें, क्योंकि दुहाई को शीघ्र ही देहली में मिलाया जा रहा है। उस स्थिति में नक्शा पास कराना काफ़ी कठिन हो जायेगा।

अगली मीटिंग में यह सब सुझाव रखे जायेंगे तथा और नये सुझावों पर भी फैसला लिया जायेगा।

हाँ वह मीटिंग 17 अक्तूबर दशहरे से एक दिन पहिले दोपहर 2 बजे सलवान स्कूल राजेन्द्र नगर, देहली में भण्डारे के फ़ौरन बाद शुरू होगी। एक अनुरोध है कि उसी ही दिन जिन-२ सत्संगियों के पूरे पैसे आ गये हैं और कोई अड़चन नहीं, उनकी रजिस्ट्री उसी ही दिन कर दी जायेगी। कार्यवाही को उचित रूप से पूरा करने के लिए आप निम्न-लिखित सूचना ठीक-२ तथा सुन्दर लिखाई में सेक्रेटरी इण्टरनैशनल सोसाइटी आफ ह्यूमैनिज़्म, टीचर्स कालोनी क्वार्टर नं. 2 मोदीनगर U.P. में फ़ौरन भेज दें ताकि रजि-स्ट्रेशन के समय कोई दिक्कत नहीं आये। जिन-२ लोगों ने प्लाट वापिस कर दिये हैं उनका जो-२ पैसा निकलता है वह लिखकर लायें सोसाइटी अपने रजिस्टर से टैली करके पैसा वापिस करने की कार्यवाही आरम्भ कर देगी।

नाम.....

पूर पता.....

पैसे कितने दिये.....

रसीद नं.....

यदि रसीद नहीं है तो सोसाइटी रजिस्टर तथा रसीद बुक से देखकर उसी समय verify कर देगी। इस मीटिंग में हर सत्संगी का आना अनिवार्य है। यदि कोई नहीं आया तो रजिस्ट्री में काफी देर लग सकती है और आप सुझाव देने से भी वंचित रह जायेंगे। उसी दिन Executives की मीटिंग भी होगी, जिसमें चुनाव भी होगा। कृपया अवश्य आइये। धन्यवाद।

आवश्यक सूचना

मानवधाम में भवन-निर्माण बहुत ही सुचारु रूप से चल रहा है। फकीर-सत्संग भवन की पहिली मंज़िल लगभग तैयार हो चुकी है। इसके अतिरिक्त सत्संगियों की सुविधा के लिए आठ कमरे छः गुसलखाने तथा छः लैटरीन भी तैयार होने वाले हैं। दशहरे के अवसर पर 13 अक्तूबर 1991 को विशाल सत्संग मानवधाम में होगा तथा मन्दिर का उद्घाटन भी होगा। गाज़ियाबाद तथा मोदीनगर के बीच दुहाई के पास मुख्य सड़क पर फकीर सत्संग भवन की सुन्दर झांकी दिखाई देती है। इस भावी अन्तर्राष्ट्रीय सत्संग-केन्द्र के निर्माण में सभी सत्संगियों और फकीर बाबा के लाखों प्रेमियों को दिल खोलकर योगदान देना चाहिए। यह मानवता-केन्द्र युगों तक भारत और विश्व के भूले-भटके जीवों को सच्चाई का रास्ता दिखाता रहेगा और करोड़ों दुःखी जीवों को राहत पहुँचायेगा। परम दयाल जी महाराज

के जन्म की बरसी नवम्बर के महीने में फिर आ रही है। इसलिये मैं सभी सत्संगियों से फिर अनुरोध करता हूँ कि हरएक परिवार अपनी ओर से 100 रु० का अनुदान मानव-धाम के लिए नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें :—

जनरल सेक्रेटरी इण्टरनशनल सोसाइटी आफ ह्यूमैनिज्म
टीचर्स कालौनी, क्वार्टर नं० 2, मोदीनगर (यू० पी०)।

यह अनुदान आप तुरन्त भेज सकते हैं या 13 अक्तूबर को उद्घाटन के समय मानवधाम में या दशहरे के दौरान में मोदीनगर, मेरठ, मुज़फ्फरनगर या देहली में सलवान स्कूल के किसी सत्संग पर अपना अनुदान देकर रसीद ले सकते हैं। आप जल्दी से जल्दी अनुदान भेजने की कृपा करें, ताकि यह शुभ कार्य शीघ्र सम्पन्न हो जाय। जिन-२ सत्संगियों ने भवन-निर्माण के लिए धनराशि भेजी है मानव परिवार उनको धन्यवाद देता है। इस बार अधिक से अधिक सत्संगी इस कार्य में अपना सहयोग दें। सहयोग के लिए धन्यवाद !

सेक्रेटरी
इण्टरनैशनल सोसाइटी आफ़ ह्यूमैनिज़्म

शोक समाचार

सत्संगी जन को दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि अमृतसर निवासी सत्संगी श्री सतपाल जी की माता श्रीमती माया देवी का स्वर्गवास 75 साल की अवस्था में दिनांक 6-7-91 को हो गया।

मानव मन्दिर परिवार शोक-संतप्त परिवार के साथ पूर्ण सहानुभूति रखते हुए परम पिता से हार्दिक प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में वासा दे तथा शोकाकुल परिवार को सहनशक्ति व शान्ति प्रदान करे।

जनरल सेक्रेटरी

परमसन्त दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जी महाराज का जीवन ; व्यक्तित्व एवं कृतित्व

[अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के उर्दू विभाग के तत्त्वावधान में सम्पन्न द्विदिवसीय सेमिनार]

परमसन्त हज़ूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जी महाराज, एम. ए., एल. एल. डी. के रूहानी जीवन तथा उनके तीन हज़ार से भी अधिक लिखित पुस्तकों में भरे अगाध साहित्य की समीक्षार्थ एक द्विदिवसीय सेमिनार अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के उर्दू विभाग के तत्त्वावधान में, हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दजाल डा० आई० सी० शर्मा जी महाराज की सरपरस्ती में गत दिनांक 18 तथा 19 अगस्त 1991 को अत्यन्त समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। यद्यपि यह सेमिनार पहिले मई 1991 में रखा गया था, किन्तु हज़ूर मानव दयाल जी महाराज के विदेश के दौरे पर अमरीका चले जाने के कारण संयोजकों ने इसे मुल्तवी रखा और हज़ूर महाराज के भारत वापिसी पर सेमिनार की तारीख 18, 19 अगस्त 1991 निश्चित की गई।

हज़ूर मानव दयाल जी महाराज और उनकी पार्टी 17 अगस्त 1991 को दिल्ली से बज़रिये कार व मेटाडोर रवाना होकर उसी रात 9 बजे अलीगढ़ पहुँच गई। हज़ूर महाराज के साथ पूज्या भाग्य माता जी, सर्वश्री नारायण दास डोगरा, प्रेम प्रकाश शर्मा, सतीश खन्ना, आचार्य के. पी. वर्मा जज, आचार्य शब्दानन्द, ऋषि प्रकाश गुप्त एडवोकेट, पवन कुमार शर्मा, ओम प्रकाश शर्मा, भगवान

ब्यास, कुमारी जगवन्ती तथा लखनऊ से आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी सम्मिलित थे। अन्य अनेक सत्संगी बन्धु भी अलीगढ़ पहुँच कर सम्मिलित हो गये। अलीगढ़ में विशाल हजूरी पार्टी गोविला बन्धुओं के विस्तृत निवासस्थल पर ठहरी।

सेमिनार 18 व 19 अगस्त को प्रतिदिन तीन सत्रों में आयोजित किया गया था जो क्रमश: 9 बजे प्रात: से 12 बजे तक, 4 बजे लाम से 6-30 बजे तक, तथा 7 बजे रात से 8 बजे रात तक होता था।

उद्घाटन—सत्र की अध्यक्षता यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर श्री मोहम्मद नसीम फ़ारूकी साहिब ने की। संयोजक महोदय के स्वागत भाषण के बाद हिज़ होलीनेस हजूर मानव दयाल डा. आई. सी. शर्मा साहिब बहादुर ने अपना खुतब: (Key Note Address) अंग्रेज़ी में पेश किया जो मुद्रित पुस्तक रूप में श्रोताओं को वितरित किया गया। हजूर साहिब ने अपने खुतबे में अलीगढ़ यूनिवर्सिटी से अपने पुराने गहरे सम्बन्ध और दाता दयाल जी महाराज के पराआध्यात्मिक व्यक्तित्व तथा मानवतावादी जीवन पर अत्यन्त विशदता के साथ प्रकाश डाला।

सेमिनार के सभी सत्रों में यूनिवर्सिटी के उर्दू, हिन्दी, संस्कृत विभागों के विद्वान् प्रोफेसरों ने दाता दयाल जी महाराज के अगाध साहित्यसागर की नाना धाराओं में से अपनी-२ विशेष रुचि एवं योग्यतानुकूल एक-न-एक धारा पर अपने शोध-पत्र पढ़े। अन्य अनेक विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों ने भी सेमिनार में भाग लिया जिनमें दिल्ली तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय उल्लेखनीय हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी विद्वान् प्रोफेसरों ने

दाता दयाल जी महाराज की पुस्तकों के गहन अध्ययन के बाद ही अपने-२ शोधपत्र अत्यन्त विद्वत्तापूर्वक तैयार किये थे जिनमें दाता दयाल जी महाराज के व्यापक आध्यात्मिक एवं मानवतावादी विचारों तथा उनके अवतारी व्यक्तित्व पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला गया है और सेमिनार में उपस्थित विशाल जन-समूह पहिली बार दाता दयाल जी महाराज के महामहिमावान् जीवन और कृतित्व से परिचित हुआ है।

इस सेमिनार में दाता दयाल जी महाराज की जन्म-भूमि ज्ञानपुर रोड (वाराणसी) तथा कर्मभूमि हनमकुण्डा (हैदराबाद दकन) से भी प्रवक्ताओं ने आकर भाग लिया और अपने महत्त्वपूर्ण शोध-पत्र प्रस्तुत किये जिनमें दाता दयाल जी महाराज के दोनों नवासे डा० राजा राम सिंह और श्री सुमित्र कुमार जी तथा हनमकुण्डा के ठाकुर कमल सिंह जी उल्लेखनीय हैं।

सेमिनार में दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल वर्मन जी महाराज के नज़म साहित्य पर भी पर्याप्त प्रकाश बाला गया और उनके ग़ज़लों, नग़मों व अशआरों को भी साज़ो-आवाज़ के साथ पेश किया गया।

अगले दिन के सत्र में हज़ूर मानव दयाल जी महाराज को एक नहीं बल्कि दो-दो सेमिनार को अपने सहज और पुररूहानियत सत्संगों से सम्बोधित करना पड़ा जिसका गहरा असर श्रोताओं के दिलो-दिमाग़ पर पड़ा और वास्तव में इस सेमिनार के आयोजित करने का यही उद्देश्य था जो हज़ूर महाराज के दो संक्षिप्त सत्संगों द्वारा पूर्णरूप से सिद्ध हुआ।

विश्वविद्यालय के छात्रों ने भी सेमिनार में पूरी तरह हिस्सा लिया और अत्यन्त शालीनता और मनोयोग के साथ

सेमिनार को हर नरह से सफल बनाने में सहयोग किया जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

सेमिनार की इस अत्यन्त सुन्दर, प्रभावी और सफल अवस्था का सम्पूर्ण श्रेय एकमात्र इसके संयोजक (Convener) डा० अन्सारुल्लाह साहिब को जाता है जिनकी विद्वत्ता, संयोजन-कौशल, हरदिलअज़ीज़ी और सर्वगुणसम्पन्नता के कारण ही अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के उर्दू विभाग के अन्तर्गत "शम्म-ए-अदब" के तत्वावधान में आयोजित दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जी महाराज के रूहानी व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आयोजित द्विदिवसीय सेमिनार पूरी सफलता, प्रभावोत्पादकता और समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

सूचना

प्यारे सत्संगी भाई-बहिनो महाराज श्री की कृपा से मानवधाम में बड़ी कोशिशों के बाद 15 प्लाट रु० 51000/- प्रति प्लाट की कीमत से और उपलब्ध हो गये हैं। क्योंकि दुहाई गाँव अब देहली में जल्द ही मिलाया जा रहा है प्लाटों की कीमत दो लाख या इससे भी अधिक हो जायेगी। जब लोगों को इस बात का पता चल जायेगा तो वह अब की कीमत पर कभी तैयार नहीं होंगे। इसलिये आपसे अनुरोध है कि जो सत्संगी प्लाट लेने के इच्छुक हैं वे जल्द से जल्द अपना नाम, पता तथा शहर का नाम साफ-२ लिखकर 25000 रु० का draft Secretary, International Society of Humanism, Manav Dham, Duhai (Payable at Modinagar) के नाम निम्नलिखित पते पर भेज दें :—

Secretary International Society of Humanism
Qtr. No. 2, Teachers Colony, Modinagar 201204
(Near Bus Stand U. P.)

धन्यवाद : सेक्रेटरी मानवधाम

परमसन्त सद्गुरु हिज होलीनेस हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

— का —

सत्तरवां (70वां) शुभ जन्म दिवस

5 सितम्बर 1991 को

मालिकेकुल के प्यारे भक्त-सत्संगी भाइयो-बहनो !

दाता दयाल जी महाराजाधिराज ने तीन हज़ार से अधिक पुस्तकों का अगाध साहित्य-भण्डार लिखकर सन्तमत और मानवता धर्म के लिए अत्यन्त सुविस्तर-सुचिक्कन आधार-भूमि तैयार कर दी जिस पर आगे चलकर विश्व-व्यापी सत्य सनातन मानवता धर्म की जगत्-कल्याणी इमारत खड़ी होनी थी। इस महान् युग-कर्म के लिए दाता दयाल जी महाराजाधिराज ने परमसन्त परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराजाधिराज को चुना और उनके ज़िम्मे यह काम सौंपते हुए कहा, "फकीर आयन्द ज़माना तर्क और विज्ञान का होगा; परम्परागत शैली को लोग क़बूल नहीं करेंगे। तुम रूहानी शिक्षा की शैली को बदल देना, वैज्ञानिक तर्जेबयाँ से काम लेना"। और परम दयाल जी महाराजाधिराज ने ऐसा ही किया। अपने सत्संगों की शैली तर्कसंगत और विज्ञानसम्मत रखी जो आधुनिक युग के शिक्षित और नई रोशनी के साइंसदाँ लोगों के दिलों में भी घर कर जाती। तार्किक लोग भी कायल हो जाते। इस प्रकार परम दयाल जी महाराजाधिराज ने दाता दयाल

महाराजाधिराज द्वारा तैयार की गई सुविस्तृत अध्यात्म-भूमि पर विश्वव्यापी मानवता धर्म की गहरी सुदृढ़ नींव रख दी जिस पर गगनभेदी इमारत की रचना होनी थी।

किन्तु पंचानवे साल के परम दयाल जी महाराजाधिराज का शरीर बूढ़ा और जर्जर हो चला था और वे भली-भाँति समझते थे कि इस विश्वव्यापी जगत्-कल्याणी युग-कर्म को उनका जर्जर शरीर सम्पन्न नहीं कर पायेगा। अतः वे बहुत पहिले से ही उस युग-पुरुष की तलाश में रहने लगे थे जिसको वे यह महान् कार्य सुपुर्द कर सकें। बीसों वर्ष की निरख-परख के बाद अन्ततोगत्वा उन्होंने परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज को, जो डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा के नाम से पौर्वात्य एवं पाश्चात्य जगत् में समान रूप से एक मूर्धन्य दार्शनिक, चिंतक, धर्म शास्त्री एवं शिक्षा शास्त्री के रूप में सुविख्यात थे, जिन्होंने भारतीय एवं अमरीकी विश्वविद्यालयों में हजारों-हजार विद्यार्थियों के जीवन को अपने शिक्षण-कौशल से प्रभावित, परिवर्तित और सुसंस्कृत कर दिया था, जो न केवल एक विद्यागुरु के रूप में बल्कि सद्गुरु के रूप में भी हजारों-हजार भारतीय एवं विदेशी शिष्यों के हृदय पर प्रेम-शासन करते थे, खोज निकाला और अत्यन्त मनोयोग से उन्हें मानवता धर्म के विश्वव्यापी, गगन-भेदी मन्दिर (इमारत) के युग-कर्म को सम्पन्न करने के लिए रजामन्द कर लिया। हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज के सुदृढ़ कर-कमलों को यह युग-कर्म सौंप दिया। इस प्रकार मानवता धर्म के अमर सन्देश की अमर ज्योति अक्षय ज्ञान के हाथों से, निःअक्षर सत्य के हाथों में होती हुई, परम प्रेम के हाथों में पहुँची और परम दयाल जी महाराजाधिराज ने अचिन्त होकर निज [redacted] में विश्राम कर लिया।

मालिकेकुल के प्यारे भक्त सत्संगी भाइयो और बहनो!
5 सितम्बर 1991 का यह पावन दिन परमपुरुष पूर्णधनी मालिकेकुल हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज का 70वाँ (सत्तरवाँ) शुभ जन्म दिन है। आज का पावन दिन, शुभ घड़ी हम सबके लिए शुद्ध पवित्र हृदय और मन से मात्र यह शुभ संकल्प लेने का है कि परम दयाल जी महाराजाधिराज के कर-कमलों द्वारा रखी गई बुनियाद पर, जिस गगनचुम्बी विश्व-व्यापी मानवता मन्दिर के पावन निर्माण के युग-कर्म में हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज रात-दिन, बारहो मास अपना सर्वस्व न्यौछावर कर आराम हराम कर संलग्न हैं, हम सब भी प्राणपण से उनके आदेश-निर्देश में, उनके अंग-संग लग जावें और इसी में हम सबका सच्चा कल्याण है।

आज के पावन दिन यदि हम इस शिवसंकल्प का भाव-पुष्प परम हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज के कमल-चरणों में अर्पित कर सकें तो यह ही हमारी तरफ से उनका 70वाँ शुभ जन्म-दिन सच्चे रूप में मनाना होगा।

"शिवसंकल्पमस्तु"

दासानुदास
शब्दानन्द

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज का

दशहरे के सत्संग दौरे का प्रोग्राम

13-10-91	प्रातःकाल 10 बजे मानवधाम मन्दिर का उद्घाटन सत्संग और भण्डारा।	मानवधाम दुहाई गाजियाबाद और मुरादनगर के बीच में
13-10-91	मोदीनगर सायंकाल 7 से 8 बजे तक सत्संग।	श्री एस. डी. शर्मा का निवास स्थान क्वार्टर नं. 2, टीचर्स कालोनी, मोदीनगर।
14-10-91	प्रातःकाल 8 से 10 बजे तक सत्संग। सत्संग स्थल के पते के लिए श्री एस. डी. शर्मा से सम्पर्क करें।	
14-10-91	सायंकाल 5 से 7 बजे तक सत्संग।	श्री ब्रह्म सिंह-48 डिफैन्स कालोनी मेरठ।
15-10-91	प्रातः और शाम का सत्संग श्री रुपेन्द्र बत्तरा।	लोहा बाज़ार, मुज़फ्फरनगर
16-10-91	मुज़फ्फरनगर से रवानगी और देहली दोपहर 3 बजे तक सलवान पब्लिक स्कूल में पहुँच।	
17-10-91	प्रातः 9 से 12 बजे तक सायंकाल 4 से 6 बजे तक सत्संग।	सलवान पब्लिक स्कूल ओल्ड राजेन्द्र नगर नई देहली।
18-10-91	प्रातःकाल 8 से 11 बजे तक।	

नोट :—बाहर से आने वाले सत्संगियों का निवास और भोजन का प्रबन्ध सलवान पब्लिक स्कूल में किया जायेगा। सत्संगी अपना बिस्तर साथ लायें।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Sept. 10th, 1991

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur (Pb.) India

LIGHT ON ANAND YOGA

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj
M.A.,LL.D.

Where to Fix Attention

A man is made of three elements : Body, Mind and Soul. Properly speaking, man comes from the Sanskrit word 'Man' or 'Manas' (to think). The creature that is capable of thinking is man. In man, the Mind-principle has received its utmost development, and it is on account of Mind that man has been called "Man". God is the source of Thought. If not anything else, he must be the Perfect Thought ; and hence, to call him Perfect Man and the Greatest of all would not be derogatory. In Sanskrit language they call him 'Purush' (Man). 'Purush' has been derived from the Sanskrit term 'puru' (body) and 'Us' (to live). One who lives in body is 'purush', and as such, he is "Man". If man is the chief of the Creation, the God-Man or the Man-in-Divinity is the chiefest of all. This is "the ideal" that religion

has been preaching in a very guarded language for fear of those who do not accept Truth and cling only to the rituality.

This "Divine-Man" is 'Ishwar' or 'Brahma' from their particular points of conception. As is the 'Jiva' so is is the 'Brahma'. As is the drop, so is the Ocean. As is the little, so is the mickle.

The 'Brahma' or God is perfection. Man is also Perfection. The difference between them being only this, that God is Perfect Manifestation while man is "becoming the Perfect Manifestation", God is Ideal and man is Idealistic. God is the Pervading principle that exists in all, and man partakes of that Divinity more than anything else ; hence, it is in man that God should be sought after. He is not without or outside of man but he is in and within man and should be found out inside the man.

Ideal exists in idea ; and the one that holds the Ideal, is idealistic. Ideal is a thing to be worked out and not to be talked out. "Idealistic" is the word appropriate for that man who manifests the Ideal in his personality.

No idea has ever given rest to a human mind unless it has been reduced to action. The realisation of the abstract is possible only in the concrete. Abstract requires to be concretised, idea is to be actioned, and precepts are to be exemplified. Light a lamp, let it cast its lustre around. No amount of

discussion on Light is necessary. Burn yourself, and burn others. Become enlightened, make others, enlightened, and this is an approach of idealism to the Goal. Idealism is only a path and Ideal is the Goal.

Man and God both resemble each other. This resemblance is not only in their Spirit but in their Body also. Man's body is a Little Universe while God's body is the Large Universe. Everything that is, or that which exists, abides in both the Universes. Microcosm in in no way different from Macrocosm. If man lives in the God of Great Universe. God Himself in turn lives in man, and man's Universe. If a drop of water is in the midst of an ocean, the ocean itself must be in the drop of water. There is reciprocality in both. If one is possible the other is also possible. And that is why Divinity should be sought in Humanity, or rather, should be found in "Man".

Having said so far, we should try to decipher the variations in human brain i.e. the Little Universe and its prototype in Divine Frame or Big Universe.

In man there is Trinity. He is composed of Body, Mind and Soul. Similarly in God also there is Trinity. He is composed of Body, Mind and Soul. Soul is causal-body. Mind is mental-body and Body is corporeal-body. These are the three in both the frames. We should be forgiven if we say

that "Soul is a body". It has never before been said so, but there is no harm in saying now as we do. Soul being the causal-body, is Spiritual ; Mind being the mental-body, is Mental ; and body being material-body, is Physical. As is "this" so is "that".

It is in the Spirit that Spirituality should be sought after, and it is there that the "perfection of man-hood" should be aimed at.

Our approach to Divinity should be from Humanity. Man is in unity with the Divine principle but he knows it not ; and so, this Unity is to be sought for, explained, and found out in him

If man is born of God, he must be 'of God' and 'a God' just as man is begot of a man. If God is Perfection, that Perfection should be latent in man as well. It is from Perfection that Perfect is born. Likewise, Im-Perfection begets Im-Perfection. One who believes in the im-perfection of man, must also admit that God the creator must also be Im-Perfect. As is the father, so must be the child ; and as is the grown up child, so must the father have been. 'One who has seen the Son has seen the Father"; "one who knows the Son, knows the Father", for both must be similar in every way.

ओं पूर्णमदः, पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य, पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

Therefore, the fixity of attention should be aimed at where there is "the reciprocality of both

the factors". That is the "seat of Immortality" where permanent and everlasting Happiness abides.

Unity and its Method

In man there are desires. He has needs, and he fosters wishes. In God there is desirelessness, needless-ness and wishless-ness. Why is it so? Because, one is Perfect, and the other "wishes to be Perfect". His wish to be perfect or his Im-Perfection will vanish when he is united with the Perfect.

Why is a man not at rest with himself? Who is there so much restless-ness in him? Why is he given to constant worries? Simply because, he wants to become what he is in reality. Being an embryo, he wants to grow, and the centre of growth is in the Divine-Man.

Nothing but Union will do all, will satisfy all desires, simplify all needs, and abbreviate all wishes. It is not to be done from without, it should be done from within, and the moment he realises the Divinity within him, he achieves Unity and Divinity. And all desires, needs and wishes will vanish in a trice.

As all the electric wires meet in the fount of electricity, so all the individuals have their real source in the fount of Divinity. It is from It that they get their Life and sustenance. They are attached to each other like so many connections of telegraph, electro-graph, or heliograph etc.

A man's body is worked-up chiefly by eighteen glands : six in the Physical frame, six in the mental frame, and six in the Spiritual frame ; and so are these to be inferred in the Divine-body (Big Universe) as well.

The whole structure of the human body has its central fountain in the head, wherein is the combination of all nervous systems. It is the top-most pinnacle in every man's head. It is from it that nerve-currents run to the different parts down below and give them Life. As long as the Life-Current works and pervades the body, so long is his life and activity ; and when it departs and goes back to the fountain-head, all activity and Life vanish at once.

This is experienced every day, as has been said before. When a man gets awakened the Current of Spirituality descends from the top-most fountain of nervous system giving life, zest, and Energy to the whole body ; and it is through it that a man is enabled to perform his physical actions and worldly pursuits. After this stage, when he returns to dream-land the Current is redirected or rather detached from the sensory centres and attached to the seats of Mentality in the Subtle-body within, rendering the Physical system altogether inert and senseless. It is here that the dreaming takes place. And when the Spiritual current detaches itself from the Mental centres and proceeds to the Soul-centres, it renders the Mental-frame inert

and senseless in its turn.

In the condition of wakefulness, the Spiritual Current descending downwards, has had innumerable centres of activity in the plane of Physicality. Withdrawing itself from it, it goes to the centres of Mentality, and thence to the causal-body, the seat of deep sleep. It is a daily occurence within every twenty four hours. When the Current descends downwards, it is Life, when the Current ascends upwards, it takes away all the life and activity of lower regions with it. This process goes on for a hundred years or more in a man's life. This is enough to convince him of the existence of the Life-Current and its ascension and descension.

In the same way, when a child is born, the Current descends from his top to toe ; and when a man dies, it ascends from toe to top, and departing from thence, makes the body altogether senseless.

It is in the head of a man where lies the joining link that unites the Human with the Divine. And it is "there" that the attention should be fixed.

This "fixity of attention" is the method of devotion which the August RADHASWAMI taught and prescribed to his votaries.

Different Centres of the Body

by

Param Sant Param Dayal

Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Whatever you think, it happens. This is the secret, this is the mystery, which I am unfolding to you. His Holiness Data Dayal Ji Maharaj, my Guru was kind enough to initiate me to the path of saints and told me, "If you remain attached to the physical body of your Guru, or to his manifested form, you cannot free yourself from the cycle of births and deaths. I have solid proofs, in this regard. I will like to give some examples from my own personal life.

My father was very short-tempered and had little control on his tongue. My mother was a very religious, pious, noble soul and a devotee of God. She used to say, "I pray to God that I should never be born as a woman in my next lives." I can well understand her feelings. Before her death, she said, "I sincerely wish that both my sons should be blessed with sons only." I wrote to my younger brother Rai Sahib Surrendra Nath that according to her wish, mother will be born at his house as the eldest son.

My prediction came true. My brother was blessed with a handsome son (Shivinder), who has a great attachment with me and Rai Sahib.

My late daughter Prem Piari, while dying remembered her husband. A lady, Sarla Devi is the wife of one of my closest friends. When that friend of mine came to me for condolence. I predicted that my departed daughter Prem Piari would be born to Sarla Devi, as a daughter and would not enjoy happiness in her married life. Her mother-in-law was very cruel. She tortured my daughter and ultimately gave poison to her (Prem Piari). I knew that Prem Piari would carry her samskaras of her past life with her. Ultimately Sarla Devi was blessed with a daughter who was married at young age and became a widow after a few years. My prediction came true.

On the basis of my experience, I can say that the solution of all our worldly problems, worries and afflictions lies in going beyond the mental levels or the state of Mahasunna. I am grateful to those aspirants and devotees, who helped me to go beyond the mental realms by telling me that I appear to them at the time of their difficulties and help them in solving their problems. Now I know what reality really is ? Now my Sadhana (meditation) is on the Surat, not on the mind. But it is very difficult to attain that stage, because most of the people of the world have the desires for worldly things, name, fame and pros-

perity. So the teachings of the saints are not for everyone. Even most of the Gurus of today are not interested in the well-being of mankind, but are more interested in selfish motives of name, fame and their institutions. The initiates of this kind of Gurus can never benefit in any way.

Thought has a great power. Hazur Baba Sawan Singh Ji Maharaj used to advise a young girl to get married. But she refused and told Hazur Baba Sawan Singh Ji Maharaj that she would do Sadhana (meditation) in her future life. After Baba Sawan Singh Ji left his body, his successor Hazur Baba Jagat Singh Ji Maharaj also advised that young girl to get married, but she refused. After sometime she started visiting me. I also advised her to get married, but she refused.

One day she came to visit me and told me, "Baba Ji ! I saw a dream, in which Baba Sawan Singh Ji Maharaj appeared and said, 'where should I find a bridegroom for you ? In the meantime Baba Ji you appeared and Hazur Sawan Singh Ji Maharaj told me to marry you.'" Why that young girl had such a dream ? She had such a dream, because in her unconscious mind she had a desire to get married. Whatever thoughts or Samskaras are in your sub-conscious mind, they get magnified in your dreams. So always watch your thoughts and mend them. Your thoughts are the maker of your life.

Whatever thoughts, suggestions and impressions are imprinted upon your mind, are manifested sooner or later. Nothing comes from outside. Everything is already in you. Any form, whether it is the form of Rama, or Krishna or of any Guru that appears to you, is nothing but a reflection of your own mind, your own thoughts or Samskaras.

Your own mind is your Guru and also the follower. Try to understand this secret from the discourses of a realized soul. Always entertain good, noble positive and constructive thoughts. None can help you. Even a saint who dwells in Light and Sound cannot do anything for you. If you are successful in your mission, it is due to your own faith, belief and conviction and the will of the Supreme Lord.

Whatever anybody says or writes, it is according to his intellect and understanding. The result of my research has proved that I am only a bubble of consciousness with ego. I had the Samskara of Sanatan Dharma (Eternal Religion), when I was initiated in Radhaswami Faith. At first its literature did disturb me much, because there was denunciation of every faith in that literature. But I never lost faith even for a moment in my Guru Data Dayal Ji Maharaj. His advice to do this work did help me to realize the Truth.

There are different centres in our body. Our

Surat (attention) enjoys the bliss of that very centre, where it dwells. All these centres have been differently named by different religions and sects. For example Sanatan Dharma Islam and the saints have named them differently as :—.

Sanatan Dharma	Islam	Sant Mat
Om Bhoor	Talub	Teesra Til
Om Bhawa	Ishak	Sehas-Dal-Kamal
Om Swaha	Maharfat	Trikuti
Om Maha	Tauheed	Sunn
Om Jana	Astagna	Maha-sunn
Om Tapa	Fanaha	Bhanwar Gupha
Om Satyam	Bagaha	Sat-Lok
Alakh	Be-Rup	Alakh Lok
Agam	Be-Nishan	Agam Lok
Anaam	Be-Naam	Anami Dham

They are all centres of meditation, but everybody cannot understand them. I have read Brahma-Sutra. It is written there that, "Happiness is the head of 'Vigyanmai-Kosha', (intellectual level) right shoulder is contentment, body is bliss and its tail is Brahma." When we meditate regularly, contentment, bliss and happiness automatically develop in us. Every religion has the same aim of attaining bliss and peace, but their ways may be different. Sanatan Dharma preaches the meditation on light, whereas Radhaswami Faith lays stress on reaching the state of Light and Sound, after going through the lower stages. Gayatri

Mantra advises to hear the song of three kinds (gross, subtle and causal) and then to see the Light. Scriptures of Sikhism refer to 'Prakash' and 'Shabda' (Light and Sound), whereas sacred Quran refers to Noor (Light). Tell me, where is the difference between Radhaswami Faith, Sanatan Dharma and other religions ? All of them preach the same Truth. But very unfortunately people fight for different words.

I have unfolded the Truth to you for your benefit. If you really want to get liberation, then stop visualizing forms and visions of Baba Faqir Chand, Data Dayal Ji Maharaj, or Baba Sawan Singh Ji Maharaj, or of any Guru. Meditate on Light and Sound within you.

Hazur Maharaj Rai Salig Ram Ji has written that sound is the face of the Sadguru and Light is His feet. The Garur Purana says that till you meditate on the Holy form of the Guru and recite Gyatri Mantra, or so long you do not go beyond Para-Brahma, you cannot get liberation. The liberation from the cycle of births and deaths is possible only, when you realize that you are neither body, nor mind and not even soul, but beyond all these. You are merely a bubble of water, which will break and mingle in the ocean.

Guru is always graceful, provided you obey his orders. Mostly people go to their Gurus for selfish motives. Respect and love your Guru with all your

heart. Serve him without the expectation of some reward. My wife was confined to bed for a long time. My daughter said to her, "Mother ! father takes away the sins of others on him and they get well. Why don't you tell dear father to take away your sins also, and make you healthy again." My wife replied, "Do not say like that my dear daughter ! How can I transfer my sins to your father ? I would rather die soon than do so." That was true love. But think of the modern wives, how much respect do they pay to their husbands ? One modern woman came to me and said, "Baba Ji ! my husband does not obey me, what should I do ?

I said to her, "Why don't you obey him."

She said, "Why should I obey him. He is unbearable Baba Ji ! Pray for his death." See the difference between a modern westernized girl and my orthodox wife. Try to be practical in your life Love your family. Take care of your mind. Follow the advice of a true Guru. Have firm faith in him and always entertain noble and positive thoughts, help the needy, your life will automatically become happy.

———

MAN'S SEARCH FOR ETERNAL TRUTH

by

H. H. Manav Dayal

Dr. Ishwar C. Sharma

The propulsive force behind world civilization has been man's unquenchable desire to probe—from the outer reaches of the universe to the depth of his own personality. To fathom the secrets of external nature and the experiences of the inner self, to glimpse the intimate relationship of spatiotemporal destructible matter and transcendental indestructible psyche has been the motivation for our cultural evolution. The innate urge to understand the immutable laws of natural forces and to overcome the limitations in human mastery of space and time, diseases, old age and even death, is indicative of the presence of that which, in essence is infinite and eternal—the Soul, Atman, Logos.

The gradual progress of human knowledge in the field of science, religion and philsophy, which seems to be bringing man nearer the whole Truth, is

hinting at the integration of all the specialized branches of knowledge into one organic pattern, the concept of unity in diversity.

There is no doubt that specialization in science and technology, has been of tremendus practical use to man. The present progress of culture and of human society, the growth of social, political and cultural institutions, could not exist without the specialization of research. Because of specialization in physical, biological and social sciences unpreceden ted progress has been witnessed in our time. For whatever synthesis has been done to coordinate and compare discoveries of all the particular disciplines, point to one existing fact—that all the ways of the search for truth are convering at one point. The glimpses of the eternal Truth, whether experienced by scientists, philosophers, sages or mystrics, indicate that the Ultimate Truth is One.

The first half of the twentieth century, was a transitional period of human history. It was a period when political institutions developed rapidly and two World Wars brought havoc as well as hope—in the atomic destruction of 1945, on the one hand and the establishment of United Nations Organization on of the other. It was a period, daring which the greatest democracy of the world experienced the worst economic depression and also reached the height of affluence and prosperity. It was a period,

during which occured the vile atrocities of autocrats and dictators, as well as the emanicipation of nations, whose freedom had been trampled for centuries by imperialistic ambition.

The castism in science, religion and philosophy is a strange phenemenon. Though philosophers and scientists disavow tenacity in truth seeking, a large majority in the West have refused to give up routine methods of research and have adhered to theories, even at the cost of facts. The same is true of many Western theologians, who have not shed their conservatism, even though honest attempts have been made to reinterpret the theories of philosophy and religion in the light of scientific discoveries. At the other extreme some have repudiated even the basic truth of religion, while creative scientists are accepting is pausibility. The basic fact, of course is the existence of God, as Supreme Reality, as the unmoved Mover, immanent as well as transcendent force, the ground of all that exists. It is really the greatest anomaly of our age that in the West there are Godless theologians, affirming the death of God, as the doctrine for modern times.

At the very face of it, the statement, "God has died in our own time" and that the death of God is "ontological", a real death of his being, is logically absurd. One cannot use the term God and also state that He is mortal. It is not clear what the Godless

theologians mean by the term God, when they make their assertions. Actually, this anomalus attitude is more than likely the outcome of that trend in Western culture, which has effectively isolated philosophy, science and religion from one another. Research and scientific discovery in the second half of the twentieth century illuminates this blundering bifurcation of knowledge.

Like historians in general, historians of philosophy are prejudiced by one theory and another and the account they give is partial and biased. Only by studying ancient Greek thinkers from original sources and reserving judgement, we can discover their errots. Thus, the dispassionate study of the philosophers of Greece shows that their sole purpose was to understand the nature of cosmos and the meaning of human life. For them, espccially the great thinkers like Heraclitus, Pythagoras, Socrates, Plato and Plotinus—cosmos and man, God and individual soul had intimate relation with each other in order to understand, the purpose of human life, and its meaning in the cosmos, analysis of the physical world and the relationship of human consciousness to God was necessary. The ancient philosophers were not mere theorists. They existed prior to the prejudices naturalism, monism, pluralism and realism. Their main interest was the experience of their innermost experience.

Socrates, the founder of a theory of knowledge expressed the visions and ideas, which were outcome of his thinking, meditation and intuition. His life demonstrated more than a theoretical belief that the goal of man was to rise above worldly limitations. His courageous speeches at the time of his prosecution, his refusal to be intimidated or to attempt to escape punishment, are the facts of underestimated significance. Contemporary historians of philosophy overlook the great emphasis, which Socrates laid on "taking care of the soul" and the importance of his spiritual experiences—the source of his own beliefs and the source of inspiration to his pupil Plato.

Intuitions and dreams guided Socrates throughout his life. He refused to exchange poison for exile by pleading guilty, not simply because he thought it unethical, but because of a prompting from the divine source. Plato's dialogue "Phaedo" which records the last words of Socrates in prison, express his lis life's spiritual and metaphysical basis. His pupils are astonished at the courage and calm, which the teacher (Socrates) displays by emphatically d elling on the immortality of the soul and declares t at death is not evil. He says that a philosopher must die happy in the cause of truth, because it is only by death there can be hope to attain the greatest good,in the other world. According to Socrates pure knowledge is attained only, when the soul

separates from the body and when God Himself is pleased to release the individual. Throughout his discourses there is no doubt that the intellectual approach of Socrates, in the clatification of concepts and the significance of virtue, was inspired by his inner spiritual urge for the purification of the soul.

Plato's greatest contribution to philosophy is the clarification of the relationship between the spatio-temporal world and the supreme transcendental reality. For Plato, the soul is like two-faced mirror. On the one hand it reflects the world of objects and on the other the transcendental Reality—God. The expression of inner experience gives added dimensions to the intellectualized. A true philosophy can only arise from spiritual experience, because spirit is the essence of all existence. The term 'spirit' is applied to the infinite basis both of human personality and of the cosmos. All great philosophers have had access to the power of the spirit, and have tried to express their experiences without reservation, as did Plato. Such an expression should be judged in its wholeness, not analyzed or isolated from its context, as contemporary scholars attempt to label Plato a realist, or an idealist, or a monist or a combination of all these ideologies. We should never forget that the eternal truth is not bound by any limitations or isolated view points.

Plotinus, who is called a neo-Platonist, derived

inspiration from Plato. Plotinus's philosophy was primarily the outcome of his personal inner experience and his spiritual development. His own intuitive experience, his meditation, the glimpses of the divine light, led him to his fundamental convictions, including that God is the source of all existence.

Plotinus's cosmology reveals the presence of individual differences and plularity of souls in the spatio-temporal world, emanating from one God, who is Himself infinite and undifferentiated and is identified with the light above light. Beyond this, however, he tried to avoid the use of any positive concept to define God, lest it conceptually limit Him. Human soul individutes from the world soul, which itself is an emanation from the infinite God. Before being incarnated, the soul was in the state of constant contemplation of the eternal Nous (Mind), and had complete knowledge of the Good. Having separated from God and descended to the material world, it is now on its journey back to God and passes through various births in the ascent towards the Supreme Source. In the state of estacy, the soul is raised above all limitations and merges with the soul of God. Only being reunited with its source the soul can retain true knowledge. These ideas of Plotinus are the expression of empirical inner experiences, arising from the link of this individual consciousness with the cosmic current. The strong living philosophy of

Plotinus was not merely a feeling, but an integrated whole of knowing, feeling and willing—a unitive dynamic and experiential pattern.

Reason can neither prove, nor disprove the concept of God as Final cause. Kant the well-known philosopher claims that we cannot do without the concepts of God and soul, freedom of will and immortality but at the same time their existence in the realm of pure reason cannot be proved. However he says that we should not reject the notion, since these concepts must be accepted on pragmatic grounds, as the necessary presuppositions.

Science remains contented with a disinterested search for truth, until ultimately it is faced with ethical problems. It must also settle certain issues with religion. Psychology is forced to consider the psyche, which embraces the conscious, the sub-conscious the unconscious and the paraconscious levels of mind. The physicist's concepts of infinitude and omnipresence conflict with the notion of a personal God. Pragmatism ultimately fails to resolve these issues. This results in the dichotomy of truth and opposing theories which distort the truth. The radical theologians deny God, by declaring His death. The radical tradionalists stick to the literal interpretation of the Holy Bible, shutting their eyes to any scientific truth. Thus they bring about an absolute schism between science, religion, philosophy and theology.

Whenever a man searches for truth, the recognition of that truth always emanates from the soul, the infinite aspect of the finite personality.

When the intuition is honoured, and when the inner experience corroborates the external observation the diversity is understood in its right perspective. Differences and duality are not abolished, but an insight into the underlying unity weaves a coherent and consistent pattern into the differences. Truth is then established as an organic whole of various inter-related parts, which are neither mutually exclusive, nor absolutely independent. Reality is fundamentally one and essentially eternal.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves

Love and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

I had given you information about the satsang tour upto 3rd week of March. Most of the time in the rest of the month was spent in the writing of the Vaisakhi message and the preparation for the festival. The monthly satsang of March, being very close to the Vaisakhi, was attended by a very large number of satsangis. People began to pour in the Manavata Mandir on the 1st April 1991. We proceeded on a short tour of Himachal Pradesh on the 5th April. The main purpose of this tour was attending the initiation function of the young son of Master Prem Lal in the village Mairan near Bilaspur.

We started on the tour by Maruti Van around 8 o'clock in the morning and stopped over at the native village of Mr. Narayan Das Dogra known as Sarar Dogri where a special satsang had been orga-

nized by Shri Narayan Das and was attended by about six hundred satsangis from the vicinity. There was a special purpose for organizing a satsang in the village. I will like to give a detailed account of this to you here. Approximately three months before the tour I had a pleasant dream, the truth of which was confirmed when we arrived at Sarar Dogri. I normally doubt dream of Param Dayal Ji Maharaj because I feel his presence in me the twenty four hours. But this dream was unique and meaningful. Param Dayal Ji Maharaj appeared in that dream in a white dress with grey jacket. He was healthy, handsome and full of lustre. The place where he appeared had the background of mountain behind. I asked him, "Maharaj Ji, where were you ?" He replied, "Sharma, I did not go anywhere. My liviug place is here in the mountains. I was here all the time." I saw Maharaj Ji having descended from the stairs of a temple in the background of a mountain before coming near me. As already stated, his face was brilliant with light and lustre. I said to him, "Holy Father, it is very good that you have come back. Now you may kindly give satsang." He replied, "Satsang will be delivered by you. This place is my home. At this realistic scene I saw the presence of Mr. Narayan Das Dogra and Mr. Pardesi the President of the Trust. I felt immense bliss in this dialogue in the dream and tears of love rolled down from my

eyes. Maharaj Ji said again, "This is my own home. I have not gone anywhere else."

When I woke up from the dream, I found that my pillow was wet with my tears of joy. The significance of this dream is that Param Dayal Ji Maharaj who is omnipresent in the subtle spiritual sense as well as in gross material reality, is the ground of all existence. He is actually beyond all energy. His appearance in the handsome form in my dream was the effect of my extreme love and sentiment for him. I believe that his subtle form like some incarnations of God, is also permanent and the satsangis who are in extreme love with that form, can benefit from it as the devotees of Rama and Krishna benefit from their forms. I have already stated that Param Dayal Ji Maharaj, being my Ideal Supreme Master due to my relationships with him in many past lives, has been present in my consciousness and meditation spontaneously ever since he left the physical body. I feel myself replete with him. That is why I write myself as Faqirmaya (merged in Faqir).

It shall have to be admitted that whenever Param Dayal Ji Mararaj went for delivering his discourses or for giving blessings to the satsangis in their homes during his life time, the radiation and the rays of his thoughts permanently settled in those places. The effect of his infinite spiritual energy is present most intensely and realistically in the Manavata Mandir.

Besides this, whenever I visited the house of the satsangis, already visited by Param Dayal Ji Maharaj earlier, for the first time soon after taking over charge of my duties as his successor, the proof of the presence of the radiation of his energy was always felt. In such cases, when I selected one of the two sofas for sitting in the house of a particular satsangi, the host would surprisingly exclaim, "Param Dayal Ji Maharuj also used to occupy this very sofa chair.

These insignificant happenings are meaningful so far as the relationship of a disciple with his Master is concerned because they are the proof of the truth and intense love which makes both the disciple and the Guru merge into each other during their life time. I would like to present another happening in this connection. The marriage of my elder son Dr. Arun Jetly was to be solemnized in Delhi on the 11th August 1983. We had decided to take out the marriage procession from the house of Ms. Shobha Saluja from the New Rajendra Nagar, New Delhi. We got hundreds of invitations printed with this address for the marriage ceremony We had not sent out the invitations except a few. After two or three days we decided that the marriage procession should start from the Hindu Maha Sabha Bhawan via Birla Temple where Param Dayal Ji Maharaj used to deliver satsangs more than twenty years ago and there I had met him for the first time in person.

When we approached the manager of the Hindu Maha Sabha Bhawan, he gladly agreed to make the Hall available for the marriage ceremony but he was not able to give us sufficient rooms to be used by our guests. We accepted that the Hindu Maha Sabha Bhawan Hall should be the venue of the marriage ceremonies before the commencement of the marriage. We went to to the Birla Temple for extra accommodation. The Birla Temple inn is most elegant in its rooms like those of any hotel. We were able to get about six rooms in that inn. In the meantime we had requested the parents of the bride that they should not indulge in any ostentation but they should give a befitting reception to the marriage procession in a decent manner. The father of the bride Mr. Mohan Lal Bahl, who is a retired Assistant Secretary of the Government of India, accepted this suggestion. He went out in search of a decent place for the reception of the marriage procession. When he was moving around the posh area of Vasant Vihar for this purpose, he accidently met the second son of Mr. H. S. Gupta at whose residence No. 35, Irwin Road, Param Dayal Ji Maharaj used to deliver satsangs before the family shifted to Vasant Vihar. The son of Late Mr. H. S. Gupta asked Mr. Bahl, "With whom is your daughter going to be married ?" Perhaps the son of Late Mr. H. S. Gupta had previous acquaintance with Mr. Bahl during his tenure as

Asstt. Secretary of the Govt. of India. When Mr. Gupta came to know that Mr. Bahl's daughter was going to be married with the son of H. H. Manav Dayal Ji Maharaj, he was overwhelmed with joy and said, "In that case we shall make all arrangements for the reception of the marriage procession on your behalf. Your daughter is our daughter. It may be mentionod that the mother of Mr. Gupta, the wife of Late Mr. H. S. Gupta who was living at that time also happily agreed with her son.

A day before the marriage ceremony the two rooms with the verandah were being cleaned. I was sitting in the verandah. The satangis were pouring in from distant places and were asking what service they could render on the occasion. At that very time arrived Shah Padam Jung the son of Param Dayal Ji Maharaj alongwith his lovely wife. Ms. Sarla Jung exclaimed with surprise, "My respected father Param Dayal Ji Maharaj had arranged for the marriage procession of Padam Ji from the Birla Temple and he had occupied the same room which you are occupying now." I was thrilled on hearing these words. When I came to know that Mr. H. S. Gupta's house was the venue of the bride and that the Gupta family at that time had made all arrangements on behalf of the bride, I was simply surprised and extremely pleased. History repeated itself exactly after twenty five years which cannot be a mere

accident. There is always an immutable law of Nature working behind events. The thoughts are permanently settled in the space and the rediations of the thoughts of a true person are eternally influential.

When I talked with Mr. Narayan Das Dogra the Vice President of the Trust about my proposed April-tour to Himachal. Mr. Narayan Das related to me his own real experience of the visit of Param Dayal Ji Maharaj to his native village more than twenty five years ago and insisted that I must stop over at Sarar Dogri. Mr. Narayan Das said, "Twenty five years ago Param Dayal Ji visited my native village. When I asked him whether I should arrange conveyance for his return to Hoshiarpur, Param Dayal Ji Maharaj said, 'I will not go away from this place so soon. This is my own home.' Param Dayal Ji Maharaj also fixed a flag of Manavata in that village on a bambu stick saying that next time we will fix the flag of Manavata on steel pole.

Consequently I agreed with the request of Mr. Narayan Das, and we stopped over his native village for about four hours. During this time hundreds of satsangis got blessings and attended the satsang. The arrangement for their lunch was elaborately made by Ms. Ram Rakhi Dogra the sister of Mr. Narayan Das Dogra. I was happy to note that the background of of the village with mountainous region was exactly the same as I had witnessed in my dream at

Hoshiarpur months ago.

It may be mentioned that about thirty satsangis including Mr. Karma Chand Dogra, had come from Chandigarh for this purpose. These people escorted us for about half a mile to the venue of the satsang. I have already stated that hundreds of local satsangis and outsiders also had gathered there for the satsang. Their faces revealed their love and respect. A tent had been fixed and carpets spread over the space between their two houses. Everyone came with some offerings and love for being blessed personally. They loaded me with garlands. The place where I fixed the flag of Manavata was exactly the same with the background of mountains as I had witnessed in my dream. The satsangis attended the satsang (spiritual discourse) with rapt attention. I really felt as if I was sitting in my own home. I may mention here that the credit of this superb arrangement went to Ms. Ram Rakhi Dogra the wife of Mr. Tara Chand Dogra who had come from Hoshiarpur four days earlier and worked day and night to make all suitable arrangements. I sincerely wish that the family of Mr. Narayan Das and of his sister Ms. Ram Rakhi Dogra should ever experience happiness, bliss and peace. It is worth mentioning here that the ninety-five years old mother of Mr. Narayan Das, who is an ideal devotee, also attended the satsang.

We started from Sarar Dogri at about 3 p.m.

and arrived in Hamirpur arround 4-30 p.m. We were scheduled to stay here over night. On the same day a satsang was organized at 7 p.m. at the residence of Mr. Goel C. J. M. but we stayed with Mr. Jnaneshwar Goel district and Sessions Judge for the night. Next morning I delivered a satsang at the residence of Mr. Jnaneshwar Goel from 8 to 10 a.m. We went to the residence of Mr. Kranti Kumar Sharma the son-in-law of Param Dayal Ji Maharaj for early lunch. We were in constant touch with Mr. Jnaneshwar Goel through telephone to find out whether Mr. Roop Lal had arrived from Mairan to escort us. When there was no news of his arrival till 12 o'clock. We proceeded to Mairan on our own. Actually Mr. Roop Lal had arrived in Hamirpur arround 11 o'clock but he could not reach the residence of Mr. Jnaneshwar Goel due to some errand. We arrived at the house of Mr. Roop Lal at Mairan at 4 p.m. Mr. Roop Lal and his brother also arrived there almost simultaneously. A satsang was organized in the late afternoon in which all the relatives of Mr. Roop Lal and many satsangis participated.

The initiation ceremony of the son of Mr. Roop Lal started early next morning. I gave my blessings to the child and also initiated him by reciting the Gayatri Mantra into his ear. We had a lunch after the ceremony and started for the house of Mr.

Jnaneshwar Goel in Hamirpur arriving there at about 4 p.m. A satsang was organized in the evening and quite a number of satsangis attended. Mr. Kranti Kumar Sharma, his son Sidhartha who is six years old, and his wife Ms. Sushamana Sharma also participated in the satsang. I always visit Mr. Kranti Kumar Sharma and Sushamana who have the same fatherly love for me as they had for Param Dayal Ji Maharaj.

Thus after night halt in Hamirpur we started for Hoshiarpur next morning after breakfast and arrived in Hoshiarpur around 10 a.m. This brief tour of Himachal was very interesting and successful. Scores of satsangis from outside had already arrived in Hoshiarpur. Within three days the number rose to hundreds. This time the series of Vaisakhi discourses started from 8th April. Morning and evening satsangs were held during 9th, 10th and 11th April. The number of the satsangis coming from all parts of India was larger than the gatherings during the past twenty years. Inspite of all these, suitable arrangements were made for the board and lodging of all satsangis by the committees organized by our General Secretary Mr. S. L. Sethi. The satsang on the 12th and 13th were held under the large Shamiana. Thousands of satsangis attended satsangs on both these days. The satsangis listened to the discourses with rapt attention. This time the main emphasis in the discourses was laid on the explanation of the word

STATEMENTS

OF

His Holiness

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj

1. Blessed are those compassionate and pure-hearted people, who invite troubles and calamities for themselves to benefit others.

2. A selfless spiritually inclind person who forgets even the idea of God for his selfless love for other people is not an ordinary person.

3. A person who concentrates constantly on God assumes the form of God. Similarly a person who thinks of brutes and brutality, becomes a brute. We assume the form of that very person on whom we meditate or concentrate.

4. It is absolutely true that one who frightens or bullies others is bullied himself.

5. To perform action is within our power, but the result of our action rests in the hands of Almighty God or Power. That is why the sages and saints have suggested that we should perform our duty sincerely and honestly and dedicate its result to the

Supreme Being. Whataver has to happen will happen at the proper time.

6, The subtlety comes to the mind of a Yogi or a person who is engaged in austerity in the same way as water flows out of the ice in heat.

7. Karma, performance of action is childhood, Bhakti, worship or devotion is youth, Gyan or intuitive knowledge is maturity and the fixation of one's mind in the state of existence or Supreme Being with contentment is termed as old-age. These are the four states which remain in imaginary or mental forms in the mind of an intelligent person.

8. Adversity and prosperity, death and life, sickness and health are the dualities, which are the result of our good or bad thoughts and tendencies.

9. Be attentive, think and recognize that you are a human being. You should not lead your life like non-living minerals, nor like plants, nor like animals. You should know the importance of human life. Every breath of human life is prescious, so don't waste even a minute.

10. Attraction of getting reward and fear of getting punishment is meant for ignorant persons, but a broad-minded knowledgeable person is not influenced by them.

———

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
परमसन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥

शुद्धिपत्र

पृ.	पं.	अशु.	शु.
76	1	दगाल	दयाल

Regd. No. 26/65/74
MANAV MANDIR

SEPT. 10th 1991
NWHSP—7

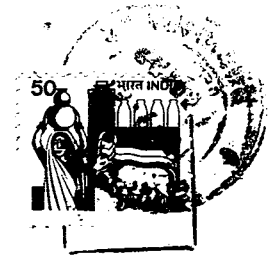

Address

H/E

415 Preside t Radha Swami
Sat Sang Bhawan via Pitlam
~~Nizam Sagar~~ Distt. Nizamabad (A.P.)
Pitlam

From :
MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001
Phone No. : 2639

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (